षष्टम् अध्याय : रसखान के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

संस्कृति के अन्तर्गत दर्शन, साहित्य, सामाजिक परम्परायें सभी आते हैं। जब हम रसखान के काव्य में संस्कृति पर विचार करते हैं तब सर्वप्रथम हम सांस्कृतिक तत्वों का विश्लेषण करते हैं। मध्यकालीन संस्कृति की प्रमुख धारा भक्ति भावना रही है। कृष्ण भक्ति की सगुण धारा में कृष्ण एवं संसार दोनों को सत्य दर्शाया गया है। यद्यपि रसखान की भक्ति धारा बल्लभ सम्प्रदाय के निकट है फिर भी रसखान के सांस्कृतिक विश्लेषण में रूपात्मक वैभव से भक्ति की स्रोत स्विनी प्रवाहित होती है। रसखान के प्रेम, सौन्दर्य, भक्ति के समवेत रूप का स्राव भगवान कृष्ण के मनोहारी सौन्दर्य से स्रवित होता है।

रसखान का युगधर्म जिसमें नायक–नायिका का प्रेम गुंजित होता है। वही कृष्ण के भक्ति अंकन में प्रेमी प्रेमिका का उदान्त रूप उभर कर सामने आता है कृष्ण रूप का ऐसा है जिसे देखकर राधा में गागर में जल न भरकर उनकी स्मृतियां भर लेती हैं। एतएव प्रधान प्रश्न कृष्ण के स्वरूप का विकास अध्ययन है इसलिए यहां सर्वप्रथम कृष्ण विकास के उपास्थान को प्रस्तुत किया गया है। दूसरे खण्ड में रसखान के काव्य में संस्कृति का दर्शाया गया है। रसखान के काव्य के नायक कृष्ण है। कृष्ण एवं राम दोनों भारतीय संस्कृति के आलोक साम्य रहे। राम के चरित्र को लेकर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की उसी के आधार पर तुलसी ने राम चरित्र मानस की रचना की। कृष्ण को आधार बनाकर भागवतकार ने श्रीमद भागवत की रचना की। श्रीमद भागवत सभी कृष्ण कवियों का उपजीव्य काव्य है। रसखान ने श्री कृष्ण को नायक बनाकर अपने काव्य के केन्द्र में रखा है। श्रीकृष्ण या कृष्ण का विकास प्राचीन ग्रन्थों से प्रारम्भ होता है तथा उनका भक्ति प्रेरक रूप हमें भागवत में विशेष रूप से प्राप्त होता है, ऋग्वेद, महाभारत, पुराण गीता में कृष्ण का जो रूप प्रस्तुत किया गया है वह सांस्कृतिक अध्ययन का विषय है। कृष्ण के विकास में भारतीय संस्कृति के अनेक सोपान गुजरते हैं। कृष्ण का अध्ययन भारतीय संस्कृति का स्वयमेव अध्ययन है। इसके पश्चात कृष्ण का स्वरूप स्थिर होता है इस स्वरूप का प्रयोग कृष्ण के काव्य में किन रूपों में आता है यही प्रस्तुत अध्याय का विवेच्य विषय है।

(अ) कृष्णा के विकास के उपस्थान

छान्दोग्योपनिषद् में कृष्ण को 'घोर आङ्गिरस ऋषि का शिष्य और देवकी का पुत्र कहा गया है 'तद्धयेतत् घोर–आङ्गि.रसः कृष्णाय देवकीपुत्राय उवत्वा उवाच। अपिपास एवं स बभूव। सोऽन्तवेलायाम् एतत् वयं प्रतिपद्येत, अक्षितमसि, अच्युतमसि, प्राणशंसितमसि।''[1]

कौशीतकी ब्राह्मण में भी आंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण का उल्लेख है–

''कृष्णो ह तदाङ्गि.रसो ब्राह्मणान् छन्दसीय तृतीयं सवनं ददर्श।''[2]

वैदिक वान्गमय के इन उल्लेखों से पता चलता है कि कृष्ण देवकी के पुत्र थे और घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य थे, जिनसे उन्होंने ब्रह्म–विद्या की दीक्षा ली थी और वे मन्त्र–द्रष्टा ऋषि के रूप में स्वीकार किये गये थे।

महाभारत

महाभारत–काल में भागवत धर्म का पुनरूद्धार हुआ। महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि महाभारत काल में सांख्य योग, पांचरात्र, वेद और पाशुपत चार सम्प्रदाय प्रचलित थे।

सांख्यं, योगः, पांचरात्र, वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे, विद्धि नानामतानि वै।।[3]

सांख्य और योग की चर्चा गीता में भी आई है और दोनों को एक बताया गया है, यद्यपि सांख्य अनीश्वरवादी और योग ईश्वरवादी था। आजकल जो सांख्य और योग प्रचलित हैं वे वास्तव में प्राचीन सांख्य योग मतों से भिन्न हैं। इन प्राचीन मतों का आज पता नहीं चलता है वेदमत वह मत था जिसके तत्व–ज्ञान के आधार तो उपनिषद् और आरण्यक थे, पर क्रियाओं के आधार वेद थे। 'वेदवाद' शब्द से संहिताओं में वर्णित यज्ञादि भाव का बोध होता है। सम्भवतः इसी वेदवाद की निन्दा गीता के दूसरे अध्याय में की गई है।[1]

1. छान्दोग्य, 3–17–6
2. सांखायन, शान्ति पर्व अध्याय 349
3. श्रीमद्भगवद्गीता, अ0 2, श्लोक 42, 43, 44

गीता में इसके तत्वज्ञान–पक्ष को ग्रहण किया गया है और ब्रह्म–विद्या को महत्व दिया हे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मत के तत्वज्ञान–पक्ष को 'भागवत धर्म' ने आत्मसात् कर लिया था। गीता में अध्याय–समाप्ति–सूचक पुष्पिका इसी तथ्य की ओर संकत करती है :

''इति श्रीमद्भागवद्गीतायामुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे''.....।

गीता में उपनिषदों में दिये हुए सिद्धान्तों का विस्तार किया है। इस तत्वज्ञान का प्रथम आचार्य अपान्तरतम था। महाभारत में सांख्य, योग और वेदान्त इन तीनों ही मतों का पूर्ण प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। शान्ति पर्व के कई आख्यानों में इनकी चर्चा आती है।

पाशुपत–भक्ति का उल्लेख हम पहले अध्याय में कर चुके हैं। यह शैव–सम्प्रदाय का मत था। महाभारत में विष्णु और रूद्र दोनों का समन्वय स्थापित करके विष्णु को प्रधानता दी है। भगवद्गीता में 'रूद्राणां शंकरश्चास्मि' वाले वचन में यही समन्वय की ध्वनि है। पाशुपत तत्व–ज्ञान शान्ति पर्व के 349में अध्याय में वर्णित है। 280 और 284 अध्यायों में भी शंकर की स्तुतियों के रूप में शिव का महत्व प्रदर्शित किया गया है। अनुशासन पर्व में उपमन्यु के आख्यान में इस मत का विकास दिखाया गया है। परन्तु महाभारत में पाशुपत मत का पूर्ण विवेचन नहीं हुआ है।

महाभारत में जिस मत का पूर्ण विवरण है, उसे पांचरात्र कहते हैं : जिस भागवत धर्म की परम्परा वैदिक युग से चली आ रही थी, उसे महाभारत काल में पांचरात्र नाम मिला। इस मत की विशेषता श्रीकृष्ण की भक्ति है। वास्तव में इस मत का पूर्ण पोषण श्रीमद्भगवद्गीता में ही हुआ है। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान के सूक्ष्म अध्ययन से तो यह झलकता है कि महाभारत के समय में भगवद्भक्ति वाले भागवत् कहलाते थे, जो विष्णु और श्रीकृष्ण को परमेश्वर

1. यामिमां पुष्पितांवाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।वेदवादरताः पार्थ! नन्यदस्तीति वादिनः।।
कामात्मानः स्वर्गपरां जन्मकर्मफलप्रदाम्। क्रियाविशेषबहुलां भौगेश्वर्यगति प्रति।।
भौगेश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते।।
श्रीमद्भगवद्गीता अ02, श्लोक 42, 43, 44।

स्वरूप मानकर उनकी भक्ति करते थे। पांचरात्र मत इससे कुछ भिन्न है। शान्ति पर्व के नारायणीय उपाख्यान में इसकी पूर्ण व्याख्या की गई है।

इस उपाख्यान में कई कथाएं है। इनमें पहली कथा में क्षीरसमुद्र के उत्तर की ओर श्वेत द्वीप का वर्णन है, जहां पांचरात्र धर्म के अनुयायी नारायण की पूजा करने वाले निवास करते हैं। वे अतीन्द्रिय, निराहारी और अनिमेष लोग हैं जिनकी अनन्य भक्ति से नारायण का प्राकट्य होता है। आगे के अध्यायों में बताया है कि नारद जी जब बद्रिकाश्रम में नर और नारायण का दर्शन करने के लिए जाते हैं, उस समय नारायण पूजा में संलग्न है। नारद ने उनसे प्रश्न किया कि सर्वेश्वर होते हुए आप किसकी पूजा करते हैं? इसके उत्तर में नारायण ने बतलाया कि वे आदि प्रकृति की उपासना करते हैं जो सबका मूल कारण है। नारद यह सुनकर मूल प्रकृति को देखने के लिए आकाश की ओर जाते हैं और सुमेरू के झुंड पर पहुॅच कर उन्हें विचित्र व्यक्तियों के दर्शन होते हैं। इस स्थल पर श्रोता युधिष्ठिर, भीष्म से पूछते हैं कि वे कौन व्यक्ति थे ? इस प्रश्न के उत्तर में भीष्म विस्तार से उनका वर्णन करते हैं और वसुउपरिचर की कथा बतलाते हैं। इसी सम्बन्ध में पांचरात्र सम्प्रदाय का नाम आया है, जिसमें वसुउपरिचर दीक्षित था और जो सात्वत–विधि से नारायण की उपासना करता था। इसके अनन्तर भीष्म चित्र शिखण्डियों का उल्लेख करते हैं, जो पांचरात्र धर्म के पहले अनुयायी थे और जिन्होंने मेरू पर्वत पर उसका प्रचार किया था। ये चित्रशिखण्ज्ञी संख्या में सात थे–मरीचि, अत्रि, अग्निरस, पुलस्त्य, पुलः, क्रतु और वशिष्ठ। आठवें स्वयंभू थे। इन सप्त ऋषियों ने तथा स्वयंभू ने वेदों का निष्कर्ष निकाल कर पान्चरात्र नामक शास्त्र तैयार किया, जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का विवेचन है। यह ग्रन्थ एक लाख श्लोंको का था। जब नारायण के सम्मुख यह शास्त्र, प्रस्तुत हुआ तो नारायण ने कहा, ''हे ऋषियों ! तुमने जो यह शास्त्र बनाया है, इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के आधार पर प्रवृत्ति–निवृत्ति दोनों ही मार्गों का प्रतिपादन किया है। यह शास्त्र परम्परा से वृहस्पति तक पहुंचेगा। वृहस्पति से इस ग्रन्थ को राजा वसुउपरिचर सीखेगा किन्तु उसके पश्चात् यह ग्रन्थ नष्ट हो जायेगा।'' यह कहकर नारायण तो अन्तर्निहित हो गये और चित्रशिखण्डियों ने इसका प्रचार किया। आगे वसुउपरिचर का विस्तार से वर्णन है, फिर नारद की कथा का प्रारम्भ होता है। नारद नारायण की स्तुति करते हैं और नारायण प्रसन्न होकर उन्हें अपना विश्वरूप दिखलाते हैं और फिर उन्हें पांचरात्र–मत के सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं, जिनका सारांश यह है।

''जो नित्य अजन्मा और शाश्वत है, जिसे त्रिगुणों का स्पर्श नहीं जो आत्मा प्राणिमात्र में साक्षी रूप से रहता है, जो चौबीस तत्वों से परे पच्चीसवां पुरूष है; जो निस्पृह होकर ज्ञान से ही जाना जा सकता है, उस सनातन परमेश्वर को वासुदेव कहते हैं। वह सर्वव्यापक है। प्रलयकाल में पृथ्वी जल में लीन होती है, जल अग्नि में, तेज वायु में, वायु आकाश में और आकाश अव्यक्त प्रकृति में और अव्यक्त प्रकृति पुरूष में लीन होती है। फिर उस वासुदेव के सिवा कुछ भी नहीं रहता। पंच महाभूतों का शरीर बनता हे और उसमें अदृश्य वासुदेव सूक्ष्म रूप से तुरन्त प्रवेश करता है। यह देहवर्ती जीव महासमर्थ है और शेष तथा संकर्षण उसके नाम है। इस संकर्षण से मन उत्पन्न होकर सनत्कुमारत्व अर्थात् जीवन्मुकतता पा सकता है।

उस मन को प्रद्युम्न कहते हैं। इस मन से कर्ता, कारण और कार्य की उत्पत्ति होती है और चराचर जगत् का निर्माण होता है, इसी को अनिरूद्ध कहते हैं और ईशान भी कहलाता है। सब कामों में व्यक्त होने वाला अहंकार यही है। निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ भगवान वासुदेव जीवन रूप में जो अवतार लेता है, वह संकर्षण है। संकर्षण से जो मन रूप में अवतार होता है, वह प्रद्युम्न है और प्रद्युम्न से जो उत्पन्न होता है, वह अनिरूद्ध है और वही अहंकार और ईश्वर है।''

जब वासुदेव कृष्ण के रूप में वासेव का अवतार माना गया तो प्रद्युम्न, अनिरूद्ध और संकर्षण अर्थात बलराम क्रम से मन, अहंकार और जीव के अवतार के रूप में समझे गये। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' में 'वासुदेव' अवश्य परमात्मा के लिये आया है परन्तु उसमें चतुर्व्यूह सिद्धान्त का वर्णन कहीं नहीं है। एक दूसरी बात विचारणीय यह भी है कि 'श्रीकृष्ण' के साथ संकर्षण अर्थात् बलदेव का सम्बन्ध तो और भी कई स्थलों पर है और बलदेव को श्रीकृष्ण के समान ही विष्णु का अवतार भी माना गया है,[1] परन्तु प्रद्युम्न और अनिरूद्ध का कृष्ण से सम्बन्ध केवल पान्चरात्र–मत में ही दिखाया है। इस चतुर्व्यूह की कल्पना वेदान्त, सांख्य और योग मतों से भी भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कल्पना सात्वत–सम्प्रदाय की ही थी। 'सात्वत' लोग श्रीकृष्ण के ही वंश के थे और सम्भवतः यह मत श्रीकृष्ण के समय में ही सात्वत लोगों में फैला, इसी मत को 'सात्वत' कहते हैं। इस मत का उल्लेख विशेष रूप से भीष्मस्तव में हुआ है। शान्तिपर्व के 369वें अध्याय में इस चतुर्व्यूह के अवतारों की चर्चा है और आगे हंस, कूर्म, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, राग, दाशरथि राम, सात्वत और कल्कि अवतारों

की चर्चा है और फि 340वें अध्याय में सांख्य औद वेदान्त के तत्वों के मूल से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। 341 और 342वें अध्याय में नरायण के नामों की उत्पत्ति लिखी है। पहले श्रीकृष्ण ने शिव और विष्णु के अभेद का वर्णन किया है फिर आगे बताया है किः

''रूद्र नारायण स्वरूप ही है, अखिल विश्व का आत्मा मैं हूं और मेरा आत्मा रूद्र है। मैं पहले रूद्र की पूजा करता हूं, आप अर्थात् शरीर को ही नारा कहते हैं, सब प्राणियों का शरीर मेरा 'अयन' अर्थात् निवास–स्थान है, इसलिये मुझे नारायण कहते हैं सारे विश्व को मैं व्याप लेता हूं और सारा विश्व मुझ में स्थित है इसी में मुझे वासुदेव कहते हैं। मैंने सारा विश्व व्याप लिया है, अतएव मुझे विष्णु कहते हैं। पृथ्वी और स्वर्ग भी मैं हूं और अन्तरिक्ष भी मैं हूं, इसी से मुझे दामोदर कहते हैं। चन्द्र, सूर्य, अग्नि की किरणें मेरे बाल हैं; इसलिये मुझे केशव कहते हैं। गो अर्थात् पृथ्वी को मैं ऊपर ले गया।

1. महाभारत आदि एवं अध्याय 197

इसी से मुझे गोविन्द कहते हैं। यज्ञ का हविर्भाग मैं हरण करता हूं इसी से मुझे हरि कहते हैं; सत्वगुणी लोगों में मेरी गणना होती है इसी से मुझे सात्वत कहते हैं। लोहे का काला फल होकर मैं जमीन जोतता हूं और 'मेरा रंग काला है, इसी से मुझे कृष्ण कहते हैं।''

342 और 343वें अध्यायों में श्वेतद्वीप से लौ आने पर नर और नारायण का जो संवाद हुआ, उसका वर्णन है। आगे के अध्यायों में श्राद्ध इत्यादि कई प्रकार की धार्मिक क्रियाओं का विवेचन है। फिर सात्वत धर्म का वर्णन आया है। इस धर्म को निष्काम भक्ति का पथ बतलाते हुए उसे ऐकान्तिक विधि कहा है, फिर अन्त में भागवत धर्म की परम्परा का वर्णन है जिसका सारांश है कि त्रेता युग में बिवस्वान् मनु और इक्ष्वाकु की परम्परा से यह धर्म चला।[1] इस परम्परा का उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी प्रकार से हुआ है :

इमं विवम्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।गीता 4।1

इन अन्तिम अध्यायों में सात्वत और ऐकान्तिक धर्म समानार्थक कर दिये हैं और सांख्य, योग और वेदान्त के तत्वज्ञान का अभेद बताया है। 349वें अध्याय में अपान्तरमा के पूर्व–काल का वृतान्त है और फिर अन्त में पान्चरात्र मत के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए परमात्मा के समन्वित रूप की व्याख्या की है :

जो जीव शान्त वृत्ति से अनिरूद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव के अधिदैव चतुष्टय की अथवा विराट्, सूत्रात्मा, अन्तर्यामी और शुद्ध ब्रह्म के अध्यात्म चतुष्ट का अथवा विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय के अवस्था चतुष्टय का क्रमशः स्थूल में लय करता है, वह कल्याण पुरूष को पहुंचाता है। योगमार्गी उसे परमात्मा कहते हैं, सांख्य वाले उसे एकात्मा कहते हैं और ज्ञानमार्गी उसे केवलात्मा कहते हैं।

1. त्रेता युगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ। मनुश्च लोकमृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ।
इद्ववाकुना च कवितो व्याप्य लोकानवस्थितः। महाभारत शान्ति पर्व 348, 351, 352।

वसु उपरिचर के कथानक में विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने यज्ञों में पशुबलि का निषेध किया और भक्ति–भावना पर विशेष बल दिया। यह धार्मिक सुधार का श्रीगणेश कहा जा सकता है। नारद और नारायणीय संवाद से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भगवान् भक्ति से प्राप्य हैं। नारद की भक्ति से प्रसन्न होकर नारायण ने प्रकट होकर पान्चरात्र धर्म का तत्व नारद को समझाया और अपने अवतारों का विस्तार से वर्णन किया। वसु उपरिचर के कथानक में हरि का विशेष महत्व प्रतीत होता है और नारद–संवाद में चतुर्व्यूह भगवान् का। यह भक्ति का सिद्धान्त गीता में विशेष रूप से प्रतिपादित हुआ है और जब कृष्ण के साथ उसके भाई संकर्षण, पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरूद्ध का सम्बन्ध स्थापित हुआ तब भक्ति–भावना का विशेष रूप से प्रचार सात्वतों में हुआ।

इस प्रकार नारायणीय उपाख्यान के आधार पर कृष्ण का सम्बन्ध सास्वत, वासुदेव, नारायण और विष्णु से स्थापित किया जा सकता है। महाभारत के आदि पर्व में वासुदेव को सात्वत कहा गया है।[1] द्रोण–पर्व 97–36 में सात्यकि और उद्योग पर्व 70–7 में जनार्दन कहा गया है। भीष्म–पर्व में लिखा है कि यह रहस्यात्मक नित्य– स्वरूप भगवान् वासुदेव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के द्वारा विभिन्न विधियों से पूजा जाता है। द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में इसकी पूजा सात्वत विधि से होती है।

विष्णु–पुराण में यादवों और वृष्णियों के वंश का वर्णन करते हुए लिखा है कि सत्वत 'अंश'का पुत्र था और उसकी संतान सात्वत कहलाई। 'श्रीमद्भागवत' (1–14–25) तथा (3–1–29) में सात्वतों का वर्णन यादववंशीय अन्धकों और वृष्णियों के साथ किया है और (9–9–49) में उनको उच्च कोटि का भागवत ब्राह्मण और वासुदेव बतलाया है तथा (10–58–42 और 11–27–5) में वासुदेव को सात्वतर्षभ कहा है।

1. आदिपर्व अध्याय 218 श्लोक 12 ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पतन्जलि ने वासुदेव और बलदेव को वृष्णिवंशीय लिखा है। मेगस्थनीज ने जो चन्द्रगुप्त 'मौर्य' के दरबार में मकदूनिया का राजदूत था, सात्वतों और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है।

भण्डारकर ने अपनी पुस्तक 'वैष्णविज्म ऐण्ड शैविज्म' में वासुदेव कृष्ण और वृष्णिवंश पर विशेष रूप से विचार किया है और महाभाष्य और बौद्ध ग्रन्थों से उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि वैदिक काल के विष्णु देवता ही पौराणिक काल में कृष्ण रूप में स्वीकार किये जाने लगे थे। अब प्रश्न यह है कि वासुदेव शब्द के साथ कृष्ण का सम्बन्ध कैसे हुआ ? वासुदेव वृष्णिवंशीय माने गये हैं। 'महाभाष्य' में पतन्जलि ने भी वासुदेव को वृष्णिवंश का ही माना है और 'वासुदेव' शब्द का चार बार उल्लेख किया है, जब कि कृष्ण शब्द का प्रयोग केवल एक बार किया है। बौद्धौं के 'घटजातक' में 'उपसागर' और 'देवगब्भा' के पुत्रों का नाम

वासुदेव और और बलदेव लिखा है। काण्हा और केशव नाम भी बीच–बीच में गद्यभाग में उपलब्ध होते हैं। इन शब्दों की टीका में काण्हा को काण्हायन गोत्र का बताया गया है तथा 'महाभाग' जातक की व्याख्या में कान्हा और वासुदेव शब्दों से इसकी पुष्टि भी की गई है। इससे प्रतीत होता है कि वासुदेव काण्हायन अथवा कृष्णायन गोत्र के थे। महाभारत में वासुदेव की व्याख्या वासुदेव का पुत्र ही की गई है, वासुदेव का पुत्र नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जब वासुदेव को उपास्य रूप मे ग्रहण किया गया तो वैदिक पात्र कृष्ण–जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं–के सब गुणों का आरोप वासुदेव में हो गया। काण्हायन गोत्र वाली बात इस बात से भी सिद्ध होती है कि पाणिनि ने 4।1।96 और 4।1।99 सूत्रों के अनुसार 'कृष्णायन' को कृष्णगोत्रोत्पन्न स्वीकार किया है। यह एक ब्राह्मण गोत्र था, जो विशिष्ट के वर्ग का था। मत्स्यपुराण, अध्याय 200 में कृष्णायन गोत्र को पाराशर वर्ग का भी बताया है। ब्राह्मण और सूत्र 12।15 के अनुसार क्षत्रियों के गोत्र भी ब्राह्मण–गोत्रों के अनुसार होते थे। कृष्ण, कृष्णायन गोत्रोत्पन्न होने के कारण ही कृष्ण कहलाये और फिर छान्दोग्यपनिषद् में उल्लिखित घोर आङ्गि.रस ऋषि के शिष्य और देवकी के पुत्र कृष्ण से उसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया। सभा–पर्व में भीष्म कृष्ण के विषय में कहते हैं कि कृष्ण को सबसे अधिक आदर इसीलिये दिया गया है कि वे वेद और वेदांगों के ज्ञाता हैं और ऋत्विग् भी हैं।[1]

वासुदेव और नारायण के सम्मिश्रण के सम्बन्ध में भी भण्डारकर ने निर्देश किया है। हम पहले कह चुके हैं कि महाभारत का नारायणीय उपाख्यात नारायण और विष्णु में एकता स्थापित करने का अच्छा प्रयत्न है। नारायण शब्द की व्याख्या भी इस उपाख्यान में की गई है। 'नार' जल को भी कहते हैं। ऋग्वेद में इस बात का संकेत है कि सृष्टि से पहले सब जगह जल ही जल था; फिर नारायण की नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, जिसने सृष्टि की रचना की।[2] शतपथ ब्राह्मण में भी नारायण का उल्लेख हुआ है।[3] ऋग्वेद में पांचरात्र–सत्र का प्रयोजक पुरूष 'नारायण को ही तथा पुरूष–सूक्त का कर्त्ता भी उसे ही बताया गया है।[4] तैत्तिरीयारण्यक 10।11 में भी नारायण को सर्वगुणसम्पन्न कहा गया है। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान के अनन्तर तो नारायण सर्वेश्वर के रूप में प्रस्तुत हुए। महाभारत के वन–पर्व अध्याय 188; 189 में वर्णित प्रलय के प्रसंग में लिखा है कि जब प्रलय होने पर चारों ओर जल ही जल था, तो एक न्यग्रोध वृक्ष

की शाखा पर शंख पर बैठा हुआ एक बालक ही अवशिष्ट रहा। उसे अपना मुख खोला और मार्कण्डेय उसके मुख में चले गये। वे वर्षों तक वहीं भ्रमण करते रहे और जब बालक ने उन्हें मुख से बाहर निकाला तो उन्होंने आश्चर्य–चकित होकर बालक से पूछा कि आप कौन हैं? तब नारायण ने अपना स्वरूप उन्हें बताया। मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर को यह कथा सुनाई और कहा कि तुम्हारे सम्बन्धी जनार्दन ही स्वयम् नारायण है। नारायण की कथा पुराणों में भी आती है और 'नारायण' नाम की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है।

1. महाभारत सभापर्व 38
2. ऋग्वेद 10।8!5 तथा 10।82/6
3. शतपथ ब्राह्मण 13।3।4
4. ऋग्वेद 12।6।1 तथा 12।10।90

महाभारत में कई स्थलों पर वासुदेव और अर्जुन को नर और नारायण बताया गया है।[1] इस प्रकार महाभारत काल में ही नारायण का सम्बन्ध वासुदेव से हो गया था।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि वैदिक काल में विष्णु को प्रधानता मिलने लगी थी। ऐतरेय ब्राह्मण में तो विष्णु को सर्वोपरि देव माना है।[2] शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यक में भी विष्णु के वैशिष्ट्य की कथाएं आती हैं।[3] मेत्रेय उपनिषद् और कठोपनिषद् 3।9 में विष्णु की महत्ता स्पष्टतः प्रकट की गई है तथा विष्णु के स्थान को 'परमं पदम' कहा है किन्तु विष्णु का वासुदेव से सम्बन्ध महाभारत–काल में ही जोड़ा हुआ प्रतीत होता है; भीष्म–पर्व के 65–66वें अध्याय के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। आश्वमेधिक पर्व में एक कथा आती है जो इस प्रकार है :

महाभारत युद्ध के पश्चात् जब कृष्ण द्वारका से लौट रहे थे तो मार्ग में भृगुवंशीय उट्टंक नाम के मुनि मिले। उट्टंक ऋषि ने कृष्ण से पूछा कि क्या आपने कौरवों और पाण्डवों में शान्ति स्थापित कर उनमें मेल करा दिया है। कृष्ण ने उत्तर दिया कि कौरवों का नाश हो गया है और पाण्डवों का एकच्छत्र राज्य। इस पर ऋषि बड़े कुद्ध हुए और कृष्ण से बोले कि यदि तुम

अध्यात्म–दर्शन की ठीक–ठीक व्याख्या न कर सकोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा। कृष्ण ने उन्हें अध्यात्मदर्शन समझाकर अपना विराट् रूप दिखाया। यहां इस रूप को वैष्णव–रूप कहा गया है।[4] शान्तिपर्व में भी कृष्ण को विष्णु का रूप बताया गया है।[5]

महाभारत के सूक्ष्म अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि महाभारत काल में कृष्ण का वासुदेव नारायण और विष्णु के रूप में स्वीकरण सर्वसाधारण न था। कुछ स्थलों को छोड़कर महाभारत में कृष्ण एक उच्चकोटि

1. वनपर्व 16।47 तथा उद्योग पर्व 49।1
2. ऐतरेय ब्राह्मण 1।1
3. शतपथ 1।2।5 और 14।1।1
4. आश्वमेधिक पर्व अध्याय 53–54
5. शान्त पर्व अध्याय 48

के राजनीतिज्ञ क्षत्रिय योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं और यदि हम उन स्थलों को पाश्चात्य विद्वानों की उक्ति के अनुसार प्रक्षिप्त मानलें तो महाभारत में कृष्ण को भगवान् मान लेने की आधारशिला ही गिर जाती है, परन्तु महाभारत के अन्तःसाक्ष्य और बाह्यः साक्ष्य के आधार पर इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। विण्टरनिट्ज ने अपने संस्कृत–साहित्य के इतिहास में महाभारत के तीन संकरण माने हैं। पहले संस्करण में 8800 के लगभग श्लोक, दूसरे में 24000 और तीसरे में एक लाख हैं। हरिवंश पुराण को वे महाभारत से अलग ही स्वीकार करते हैं। महाभारत के कुछ अंशों को प्रक्षिप्त मानकर यदि यह महाभारत से अलग ही स्वीकार करते हैं। महाभारत के कुछ अंशों को प्रक्षिप्त मानकर यदि यह कल्पना कर भी ली जाय कि महाभारत काल में कृष्ण को साधारण राज–पुत्र के रूप में ही स्वीकार किया गया है तो श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर – जो अन्तः और बाह्य साक्ष्य के आधार पर महाभारत काल की ही रचना ठहरती है और जिसमें अधिक अंश प्रक्षिप्त नहीं है–यह मानना पड़ेगा कि महाभारत काल में ही कृष्ण में अवतारत्व का आरोप होने लगा था। महाभारत के विषय में एक बात और भी उल्लेखनीय है। वह यह कि इस 'भागवत' एकान्तिक अथवा 'पांचरात्र धर्म का विशेष प्रचार सात्वों' के द्वारा हुआ जो योग्य और वीर क्षत्रिय योद्धा थे। यही कारण है कि उनके समय तक इस धर्म में क्षात्र बल का प्राधान्य रहा; परन्तु पौराणिक युग में विष्णु, नारायण और वासुदेव की त्रिवेणी सम्मिलित होकर बहने लगी, जिसका प्रवाह भक्ति–सलिल से परिपूर्ण था। आगे चलकर यह प्रवाह

वैष्णव–भक्ति कि विशाल सरिता में परिणत हो गया, जिसकी अनेक शाखा–प्रशाखाओं ने जनता को जीवन प्रदान किया और वह आनन्द–रस में निमग्न हो गया।

कृष्ण के जिन स्वरूपों का हमने अब तक विवेचन किया है, उनका हमारे भक्तिकालीन साहित्य से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है क्योंकि हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य के चरित–नायक ब्रजबिहारी लीला–पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण है, जिनका लीलाधाम ब्रज है और गोप–गोपियों से सीधा सम्बन्ध है। प्रेमी–भक्ति के आलम्बन, गोप–गोपियों के सर्वस्व, राधावल्लभ, नटनागर, गोपाल–कृष्ण का समावेश हमारे वाड.मय में कब से हुआ, यह एक दुस्तर समस्या है। पौराणिक–साहित्य का विवेचन हम पहले कर चुके हैं। कई पुराण तो ऐसे हैं जिनमें कृष्ण–चरित संक्षेप में दिया गया है किन्तु कुछ पुराणों में कृष्ण की लीलाओं का विस्तार से वर्णन है कृष्ण चरित्र सम्बन्धी पुराण ये हैं :

पद्म–पुराण, वायु–पुराण, वामन–पुराण, कूर्म–पुराण, ब्रह्म–वैवर्त पुराण और हरिवंश पुराण। इनका उल्लेख हम आगे करेंगे। यहां तो हम यही देखने का प्रयास करेंगे कि गोपाल कृष्ण की कथा के अन्य कौन से सूत्र हैं ? जिन शिला–लेखों का पहले उल्लेख हुआ है, उनमें गोपाल कृष्ण की कथा के अन्य कौन से सूत्र हैं? जिन शिला–लेखों का पहले उल्लेख हुआ है, उनमें गोपाल कृष्ण का कोई संकेत नहीं मिलता। 'नारायणीय उपाख्यान' में वासुदेव अवतार का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि वासुदेव ने कंस के वध के लिए अवतार लिया। 'सभा–पर्व' में शिशुपाल ने व्यंग्य में कृष्ण को गोकुल में पूतना आदि का संहारक बताया हे और भीष्म द्वारा की गई कृष्ण की प्रशंसा को झूठी प्रशंसा कहा है। 38वें अध्याय में जहां भीष्म ने कृष्ण की प्रशंसा की है, वहां यह उल्लेख नहीं है, इसलिए भण्डारकर ने इस पद को प्रक्षिप्त माने हुए लिखा है :

"The southern recension of the Mahabharat contains many interpolations.....Thus attempts have always been made to bring by means of interpolations, the stories told in the Mahabharat to the form, which they subsequently assume."[1]

महाभारत के इस संस्करण में कृष्ण की गोकुल वाली कथाओं का समावेश है। उत्तरी भारत में पाई जाने वाली महाभारत की प्रतिलिपियों में इस प्रकार के श्लोक नहीं है। कृष्ण के गोविन्द नाम का सम्बन्ध 'गोपाल कृष्ण' से जोड़ा जाता है।

1- Vaishnavism and Shaivism (Page 50 foot note)

'गोविन्द' एक पुराना नाम है और इसका उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' और 'महाभारत' दोनों में हुआ है, परन्तु महाभारत में 'गोविन्द' शब्द का सम्बन्ध 'गोपाल कृष्ण' से नहीं लगाया गया है। आदि पर्व में गोविन्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि भगवान् का नाम 'गोविन्द' इसलिए है कि उन्होंने 'वाराहावतार' में 'गो' अर्थात् पृथ्वी की रक्षा की थी।[1] शान्ति पर्व में भी इसी प्रकार व्याख्या की गई है।[2] भण्डारकर गोविन्द की उत्पत्ति गोविद् से बतलाई है, जो ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और 'केशिनिसूदन' के विषय में भी उन्होंने यही लिखा है कि यह भी इन्द्र का विशेषण था और बाद में ये दोनों विशेषण कृष्ण के साथ जोड़ दिये गये।[3] ऋग्वेद में हमें ऐसे मन्त्र अवश्य मिलते हैं, जिनमें गो, वृष्णि, राधा, ब्रज, गोप, रोहिणी, और अर्जुन आदि नाम आये हैं, उनमें से कुछ मन्त्र निम्नलिखित है :

1— ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै। यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः।
अत्राह तदुरूगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि।।[4]
2— स्तोत्रं राधानां पते ऋ0 1।30।29
3— गवामयब्रजं वृधि ऋ0 1।10।7
4— दासपत्नी अहिगोपा अतिष्ठत। ऋ0 1।32।11
5— त्वं नृचक्षा वृषभानुपूर्वी कृष्णास्वाम्ने अरूणो विभाहि।
अथर्व0 3।15।3
6— तमेतदाधार यः कृष्णासु रोहिणीषु। ऋ0 8।93।13
7 कृष्णरूपाणि अर्जुना विवो मदे। ऋ0 10।21।3

इन मन्त्रों में जो नाम आये हैं, उनका यद्यपि गोपाल कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड़ दिया गया, उसी प्रकार इन सभी नामों का उपयोग पौराणिक युग में कृष्ण से सम्बद्ध कर लिया हो।

हम पहले बता आये हैं कि 'घटजातक' में वासुदेव और बलदेव का उल्लेख है, वह कथा इस प्रकार है :

1. आदि पर्व (महाभारत) 21–12
2. शान्ति हर्व 342–70
3- Vaishnavism and Shaivism (Bhandarkar) Page 51
4. ऋग्वेद 1 |154 |6

''वासुदेव और उसके भाई देवगब्भा और उपसागर के पुत्र थे। उन्हें देवगब्भा ने अपनी सेविका नन्द गोपा और उसके पति अन्धक को वेणु के सुपुर्द कर दिया था।'' इस कथा से पता चलता है कि इस जातक की रचना के समय गोपाल कृष्ण वाली कथा प्रचलित थी; किन्तु अतर्क्य प्रमाणों के अभाव में इस जातक का समय– निर्धारण अत्यन्त कठिन समस्या है।

पुराण और कृष्ण चरित

गोपाल कृष्ण सम्बन्धी सबसे अधिक कथाएं हरिवंश पुराण में हैं। इस पुराण में कृष्ण के चरित को गोपियों के साथ सम्बद्ध कर लिया है। 'विष्णु पर्व' के 128 अध्यायों में कृष्ण–जीवन की पूरी कथा दी गई है और कृष्ण के सौन्दर्य का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है; पूतना–वध, शकट–वध, यमलार्जुन–पतन, माखन–चोरी, कालिय–दमन, धेनुक–वध, प्रलम्ब–वध, गोवर्द्धन–धारण, आदि सभी लीलाओं का इसमें विशद वर्णन है; बीच–बीच में प्रकृति का भी बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। पाश्चात्य विद्वानों ने हरिवंश–पुराण का रचना–काल ईसा की पहली शताब्दी के लगभग माना है और अपने कथन की पुष्टि में हरिवंश पुराण में आये हुए 'दीनार' शब्द को रखा है। हरिवंश पुराण में 3808 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण इन्द्र की पूजा का निषेध कर नन्द को गोवर्द्धन की पूजा का विधान बताते हैं और गउओं को ही अपना सर्वस्व कहते हैं। 3522 संख्या वाले श्लोक में 'घोष' का उल्लेख है और यह बतलाया है कि गोप ब्रज को छोड़कर वृन्दावन चले आये। 'घोष' का दूसरा नाम 'आभीरपल्ली' बताया है। हरिवंश–पुराण में आभीरों का विस्तार मथुरा के निकट महावन से लेकर द्वज्ञरका के पास अनूप और आनर्त देश तक बताया गया है।[1]

महाभारत के 'मौशल–पर्व' अध्याय 7 में आभीरों के सम्बन्ध में एक कथा आती है, जिनके अनुसार अर्जुन वृष्णिवंश के समाप्त हो जाने पर उस वंश की स्त्रियों को जब द्वारका से कुरूक्षेत्र ले जा रहे थे, तो आभीरों ने उनके ऊपर आक्रमण कर दिया।

1. हरिवंशपुराण 5161–5163 श्लोक

आभीर लुटेरे और म्लेच्छ बताये गये हैं, जो पंचनद–प्रदेश में रहते थे। विष्णु– पुराण में आभीरों को कोंकण और सौराष्ट्र के निवासी बताया गया है। पहले तो आभीर चरवाहे थे, फिर वे पंजाब से मथुरा, सौराष्ट्र और काठियावाड़ तक फैल गये। आजकल 'अहीर' शब्द आभीर का ही बिगड़ा हुआ रूप है। ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आभीरों ने मराठा देश के उत्तर में अपना राज्य भी स्थापित किया था। नासिक में एक शिलालेख भी मिला है, जिसमें आभीर शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन के राज्य के नवम वर्ष का उल्लेख है। इस शिलालेख से पता चलता है कि यही तीसरी शताब्दी का लिखा हुआ है। वायु–पुराण में अभीरों के एक राज्यवंश का वर्णन है, जिसमें 10 राजाओं का वर्णन हुआ है।[1] कठियावाड़ के एक अन्य उत्कीर्ण लेख (**Inscription**) में, जो गुण्डा स्थान में मिला है, रूद्रभूति के दान का वर्णन है। रूद्रभूति आभीर था। यह शिलालेख रूद्रसिंह नामक क्षत्रप ने लिखवाया था, जिसका समय ई0 सन् 189 के आसपास था।

आभीरों के इस इतिहास से आधुनिक विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि 'गोपाल कृष्ण' तथा 'बालकृष्ण' वाली कथाओं का समावेश 'वासुदेव' के साथ इन आभीरों द्वारा किया गया। आभीरों में 'बालदेवी' और 'बालदेवता' की उपासना प्रचलित है। 'बालदेवता' के विषय में यह भी कहा जाता है कि उसका जन्म नीच घराने में हुआ और पालन–पोषण एक दूसरे कल्पित पिता के यहां हुआ, जिसे यह ज्ञान था कि वह उसका अपना बच्चा नहीं है और उसके बहुत से निरीह भाईयों की हत्या हो चुकी है। धेनुक–वध आदि की कथाएं भी इन्हीं आभीरों के द्वारा कृष्ण–कथा में स्थान पा गई।[2] भण्डारकर ने इसी मत की पुष्टि करते हुए निर्णय किया है :

"The alliance of Krisna with Cowherdesses, which introduced an element in consistent with the advance of moraly into the "Vasudeva" religion, was also an after-growth, consequent upon the freer intercoure

1. वायु–पुराण खण्ड 2 अध्याय 37

2- Journal of the Royal Asiatic Society for 1907 Page 981.

between the wandering Abhiras and their more civilised Aryan neighbours took advantage of its looseness, Besides, the Abhiran women must have been fair and handsome as those of the Ahir Gayaliyas or cowherds of the present day are."

इस विषय में 'इण्डियन एण्टिक्वैरी' के लेख तथा ''एन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स'' के लेख विचारणीय है। कैनेडी ने अपने लेख में जाट गूर्जरों को आभीरों की ही सन्तान माना है। वेबर और ग्रियर्सन भी ईसा के पश्चात् ही आभीरों के देवता बालकृष्ण का होना सिद्ध करना चाहते हैं। ऐसा सिद्ध करने से उनका अभिप्राय यह है कि बालकृष्ण की कथायें ईसा की कथाओं का रूपान्तर है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि ईसा की दूसरी शताब्दी में ईसाइयों का एक दल सीरिया से आकर मद्रास के दक्षिण में आबाद हो गया था। इन ईसाइयों की भक्ति–भावना का पूरा–पूरा प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और क्राइस्ट से क्रिस्टो तथा फिर कृष्ण उनका उपास्य बन गया।

वैष्णवों की दास्य–भक्ति, प्रसाद, पूतना–स्तन्य–पान आदि की ग्रियर्सन ईसाइयत की ही देन बताते हैं। उनका कथन है कि पूतना बाइबिल की 'वर्जिन' है, प्रसाद 'लवफीस्ट' और दास्य भक्ति पाप–पीड़ित–मानवता का करूण कन्दन है। इन लेखों के आधार पर ईसा के पश्चात् ही बालकृष्ण की कथाओं का समावेश सिद्ध होता है। किन्तु यह बात वायुविकारजन्य प्रलाप से अधिक महत्व नहीं रखती। कीथ, मैकडोलन आदि विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया है। अन्य प्रमाण भी उक्त कल्पना के विरोध में उपस्थित किये जा सकते हैं। हम बता आये हैं कि ईसा से बहुत दिन पहले ही बालकृष्ण की कथायें प्रचलित थीं और आभारी जाति कहीं बाहर से नहीं आई थी। संक्षेप में हम निम्नलिखित युक्तियां इस विषय में उपस्थित कर सकते हैं :

1– महाभारत, वायुपुराण और हरिवंश पुराण में आभीरों का उल्लेख है।

2– काठियावाड़ में पाये जाने वाले शिलालेख के अनुसार आभीरों का राज्यकाल ईसा से पहले ठहरता है।

3– आभीरों का द्रविड़ शब्द से सम्बन्ध, जिसका विवेचन राय चौधरी ने **'Early History of Vaishnavism'** में किया है। द्रविण भाषा में आभीर का अर्थ 'गोपाल' है।

4– महाकवि भास के 'बाल चरित', 'दूत वाक्य' और 'दूत घटोत्कच' नाटकों में वर्णित कृष्ण का चरित।

5– गाथा–सप्तशती में राधा–कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख।

6– बालकृष्ण की ईसा–निरपेक्ष बहुत सी कथाओं का अस्तित्व।

श्रीकृष्ण चरित का पूर्ण विवेचन करने वाला दूसरा पुराण 'ब्रह्म–वैवर्त पुराण' है जिसके कृष्ण–जन्म–खण्ड में कृष्ण विषयक सामग्री दी हुई है। पहले अध्यायों में कृष्ण जन्म का कारण, चौथे में गोलोक का और पांचवें में राधा के मन्दिर का वर्णन है। छठे अध्याय में अशावतारों का वर्णन करते हुए राधा और कृष्ण के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। फिर सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण जन्माख्यान, आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी–व्रत का वर्णन है। नवें अध्याय में बलदेव का जन्म और नन्द के पुत्रोत्सव का वर्णन है। आगे श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है। बीच–बीच में और भी बहुत से उपाख्यान आये हैं। फिर उत्तरार्द्ध में जो 55वें अध्याय से प्रारम्भ होता है, श्रीकृष्ण प्रभाव वर्णन तथा अन्य उपाख्यानों के अनन्तर कंस की कथा और श्रीकृष्ण का मथुरा गमन दिया हुआ है। अध्याय 91 में कृष्ण को उद्धव को ब्रज में जाने की आज्ञा देते हैं और उद्धव वहां जाकर राधा और गोपियों से वार्तालाप करते हैं। 98वें अध्याय में उद्धव मथुरा वापस आते हैं। आगे राधा–कृष्ण सम्बन्धी अनेक वृतान्त हैं, साथ–साथ में और भी बहुत से आख्यान है। ब्रह्मवैवर्त में बहुत सी स्तुतियां दी गई हैं और अनेक स्थलों पर उच्चकोटि के श्रृंगारिक वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के कवियों ने बहुत कुछ सामग्री ब्रह्म–वैवर्त पुराण से ली है। ब्रह्म–वैवर्त में राधा का जो वर्णन है, उसका उल्लेख हम आगे करेंगे। इस पुराण में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हरिवंश पुराण के वर्णनों की अपेक्षा अधिक श्रृंगारिक और विस्तृत है।

पद्म पुराण

इस पुराण के पाताल खण्ड में कृष्ण चरित का विवेचन है। अध्याय 69 से 72 श्रीकृष्ण के माहात्म्य का वर्णन है और 73 से 83 तक वृन्दावन आदि का महात्म्य और श्रीकृष्ण की लीला का विवेचन है। गोपियों के अध्यात्म–पक्ष और उनकी उत्पत्ति के विषय में भी विस्तार से वर्णन किया गया है, जिसका विवेचन हम आगे करेंगे। इस पुराण में वृन्दावन, द्वारका, गोकुल, मथुरा आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है और द्वादश वनों का भी उल्लेख है।[1] श्लोक 88 से 102 तक श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन है। सूर–साहित्य पर इस पुराण का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। पुष्टि–सम्प्रदाय में पद्म–सम्प्रदाय में पद्म–पुराण की बहुत सी बातें ज्यों की त्यों अपनाई गयी हैं।

वायु–पुराण

वायु पुराण के द्वितीय खण्ड अध्याय 34 में विस्तारपूर्वक स्यमन्तक मणि की कथा लिखी है और फिर श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है। इसे अनन्तर कृष्ण को 16 सहस्र पत्नियों और उनके पुत्रों आदि का वर्णन है। इस पुराण के विषय में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें कृष्ण की गोप–लीलाओं और राधा की केलि का वर्णन नहीं है। अध्याय 42 में कुछ श्लोंकों में गोलोकवासी भगवान् कृष्ण का उल्लेख करते हुए राधा और गोप–लीलाओं का उल्लेख मात्र है।

वामन–पुराण

इनमें केवल केशी, मुर और काल–नेमि के वध की कथा है।

कर्म–पुराण

इसमें भी केवल यदुवंश का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा महादेव की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है।

1. पद्म–पुराण, पाताल खण्ड अध्याय 69

गरूड़–पुराण

गरूड़–पुराण में कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख है, जो अध्याय 144 में हुआ है। इसमें पूतना वध, यमलार्जुनोद्धार, गोवर्द्धन–धारण, केशी–चाणूर इत्यादि का वध, कालियदमन और शकटासुर–वध का उल्लेख है। कृष्ण का सन्दीपनि गुरू से शिक्षा प्राप्त करने का भी उल्लेख

है। कृष्ण की रूक्मिणी, सत्यभामा आदि 8 पत्नियों का तथा गोपियों का उल्लेख तो है, परन्तु राधा का नाम नहीं है। यह गरूड़– पुराण के आचार काण्ड में है। ब्रह्म–काण्ड में हव्यवाह की कन्या नीला, भद्रा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवन्ती, सौम–पुत्री आदि की तपस्या का वर्णन है।

विष्णु–पुराण

इस पुराण के चौथे अंश के 15वें अध्याय में शिशुपाल की मुक्ति का कारण बतलाते हुए श्रीकृष्ण जन्म का उल्लेख हुआ है। पांचवें अंश में कृष्ण का चरित्र विशेष रूप से दिया हुआ है तथा कृष्ण की लीलाओं के साथ रास का भी वर्णन है। वास्तव में इसी अंश में कृष्ण के चरित्र का विस्तृत अंकन है।

कृष्ण विषयक पुराणों के विषय और भाषा पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये पुराण विभिन्न कालों की रचनाएं हैं और बराबर इनके संस्करण होते रहे हैं। आज भी हमें इनके कई–कई संस्करण उपलब्ध होते हैं। हो सकता है कि साम्प्रदायिक आचार्यों ने अपनी–अपनी परम्पराओं के अनुकूल इन पुराणों में घटी–बढ़ी कर ली हो। मध्यकालीन भक्ति साहित्य पर सभी पुराणों का प्रभाव पड़ा है और कृष्ण के रूप ने अनेक प्रकार की विचार धाराओं को पार कर वर्तमान स्वरूप को धारण किया है। हम डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के इस मत से पूर्णतया सहमत हैं :

''कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक, अवैदिक, आर्य, अनार्य धाराओं के मिश्रण से बना है। परन्तु फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। अवतारत्व का आरोप हो जाने पर बहुत सी अतिमानवीय घटनाओं से अवतार का जीवन घुल मिल जाता है।''

कृष्ण के विकास का जो विवेचन हमने ऊपर किया है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है :

1– महाभारत में जिस कृष्ण का वर्णन हुआ है, वह वासुदेव का ही रूपान्तर है और वह पूर्णतया ऐतिहासिक व्यक्ति है। महाभरत काल में ही श्रीकृष्ण में ईश्वरत्व का आरोप हो चुका था और इनसे वैदिक कालीन श्रीकृष्ण का सम्बन्ध भी स्थापित किया जा चुका था। महाभारतीय कृष्ण का सम्बन्ध मथुरा और द्वारका दोनों से था एवं शिशुपाल की बातों से

यह भी आभास मिलता है कि ब्रज से भी कृष्ण का कुछ सम्बन्ध रहा होगा। कृष्ण–कृष्ण गोत्रोत्पन्न थे।

2– कृष्ण कथा में बाल लीलाओं का समावेश अवश्य ही आभीर जाति के कारण हुआ। ईसाइयत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, क्यांकि वह ईसा से बहुत पहले हो चुका था।

3– पुराणों में साम्प्रदायिकता की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है है और उनकी भाषा और विषय से परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के चिन्ह भी उनमें खोजे जा सकते हैं। अतः यह भी निश्चित है कि पुराणों की रचना किसी एक काल की नहीं है, विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने उनमें अदल–बदल अवश्य की है।

भागवत के श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण के चरित के सम्बन्ध में अब तक हमने श्रीमद्भागवत का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है, तथापि कृष्ण–भक्ति का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भागवत ही कहा जा सकता है। महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब समन्वित रूप से श्रीमद्भागवत में मि जाता है। भागवतकार ने अवतारों का वर्णन करते हुए, ''एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' कहा है। महाभारत में कृष्ण के जिस नारायण रूप का उल्लेख हुआ है, उसको भागवतकार ने इस प्रकार लिखा है कि नारायण के कृष्ण और शुक्ल स्वरूप असुर–मर्दित पृथ्वीका भार उतारने के लिए कृष्ण और बलराम के रूप में आविर्भूत हुए।[1]

श्रीमद्भागवत में नारायण को पुरूषावतार या आदि अवतार कहा है। ''भगवान् ने आदि में लोक–सृष्टि की इच्छा से महत्तत्वादि सम्भूत षोडशकलात्मक पुरूषवतार धारण किया।''[2] ''भगवान् ने ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच भूतों की अपने आपसे आप में सृष्टि की है। इन तत्वों के द्वारा जब वे विराट् शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें लीला से अपने अंश अर्न्तयामी रूप से प्रवेश करते हैं तब उन आदि देवनारायण को 'पुरूष' नाम से कहते हैं यही उनका प्रथम अवतार है।''[3] भागवतके अर्न्तगत ब्रह्म–स्तुति में कहा गया है ''हे अधीश, क्या

आप नारायण नहीं हैं ? आप अवश्य ही नारायण हैं क्योंकि आप ही सब जीव–समूहों के आत्मा और अखिल साक्षी है।''[4] इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी 'नारायण' और 'वासुदेव कृष्ण' की संगति लगाई गई है, यह हम पहले कह चुके हैं। वैकुण्ठवासी चतुर्भुज नारायण (महाविष्णु, श्वेत द्वीप पति विष्णु) नारायण ऋषि तथा वासुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा वृन्दावनबिहारी नन्दन एक ही भगवान् के विभिन्न रूप बताये गये हैं। श्री जीवगोस्वामी ने 'लघुभागवतामृत' के पूर्व पटल में इसका सामंजस्य स्थापित किया है और कहा है कि ''पुराणों में कोई श्रीकृष्ण को नारायण ऋषि, कोई वामन, कोई क्षीरोपशायी, कोई सहस्र शीर्षा और कोई वैकुण्ठनाथ नारायण कहते हैं।'' ब्रह्माण्ड पुराण में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है:–''जो वैकुण्ठ में चतुर्भुज नारायण, जो श्वेत–द्वीप–पति नर–नारायण ऋषि हैं, वे ही वृन्दावनबिहारी श्रीकृष्ण हैं।''

1. श्रीमद्भागवत 2।7।26
2. श्रीमद्भागवत 1।3।1
3. श्रीमद्भागवत 11।4।3
4. श्रीमद्भागवत 10।10।14

ऊपर के विवेचन से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवताकार ने कृष्ण के व्यापक रूप को लिया है। सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि महाभारत, गीता और श्रीमद्भागवत में कृष्ण के रूप का उत्तरोत्तर विकास होता गया है। महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, इसके आख्यानों में ही भगवतत्व–निरूपण हुआ है। यदि उन आख्यानों को पृथक कर दिया जाय तो श्रीकृष्ण का मानवीय रूप ही हमारे सामने आता है; यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वानों ने महाभारत में बहुत से अंश प्रक्षिप्त माने हैं, किन्तु उन आख्यानों में भागवत–धर्म और उसके तत्व का निरूपण बड़ा महत्वपूर्ण है। उसी तत्व का वैज्ञानिक समन्वय श्रीमद्भगवद्गीता में हुआ है। भागवत में भक्ति की दृढ़ता के लिये उस तत्व की व्याख्या की गयी है। इसके अन्तर्गत पृथु, प्रियव्रत, प्रहलाद आदि भक्तों की कथाएं तथा निष्काम कर्म के लिए वर्णनों से यह बात भली–भांति प्रकट हो जाती है कि महाभारत का 'नारायणीय –धर्म' और श्रीमद्भागवत का 'भागवत–धर्म' आदि में एक ही है। पर दोनों ग्रंथों में प्रधानता भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों की है।

उसमें श्रीकृष्ण का रूप लोक–रक्षक भी है और लोक–रंजक भी, फिर श्रीमद्भगवद्गीता में महाभारत के सिद्धान्तों की ही व्याख्या की है। गीता महाभारत का ही एक भाग है, दोनों ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ने से यह विदित हो जाता है। निष्काम कर्म–युक्त प्रवृत्ति–तत्व का ही दोनों में विवेचन हुआ है। सम्भवतः भागवत की रचना इसीलिए हुई और यह सिद्ध किया गया कि भक्त के बिना निष्काम कर्म सम्भव नहीं है। भागवत का मुख्य उद्देश्य भक्ति का प्रतिपादन नहीं है।

भगवद्गीता में भगवान् को प्रकृति और पुरूष से भी परे एक सर्व–व्यापक, अव्यक्त और अमृत तत्व माना गया है और परम पुरूष कहा गया है, जिसके स्वरूप हैं–व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी 'सगुण', सगुण–निर्गुण और निर्गुण तीन भेद किये हैं। कृष्ण उस परम पुरूष के मूर्तिमान अवतार हैं; यही कारण है कि गीता में भगवान् कृष्ण ने अपने विषय में पुरूष का निर्देश अनेक स्थानों पर किया है।[1]

1. देखिये गीता, 9।8, 15।7, 10।20, 10।41, 9/34

गीता में भगवान् ने अपना विश्वरूप अर्जुन को दिखाया है और यही उपदेश दिया है कि अव्यक्त से व्यक्त रूप की उपासना करना अधिक सहज है। इसी प्रकार विश्व रूप का वर्णन महाभारत में नारद–प्रसंग में भी आया है।[1] इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि सिद्धान्त रूप से महाभारत, गीता और भागवत में परब्रह्म को एक ही रूप दिया गया है, परन्तु इतना अन्तर है कि महाभारत में कृष्ण का परब्रह्म से वैसा व्यापक तादात्म्य स्थापित नहीं किया गया, जैसा भागवत और गीता में। महाभारत में पाण्डव अवश्य ही उन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं, परन्तु यह बात सामान्य रूप से स्वीकृत न हो पाई थी। भागवत में भी कृष्ण का वह स्वरूप नहीं है, जो गीता में है। गीता में ज्ञान, धर्म और उपासना का सामंजस्य स्थापित किया गया है और साथ ही साथ पिण्ड ब्रह्माण्ड के ज्ञान सहित आत्म–विद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को भी समझाया गया है, किन्तु श्रीमद्भागवत में इन सबका निरूपण विशेष रूप से करके भक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है। भागवत में अनेक अवतारों का वर्णन है, परन्तु अन्य अवतारों को ब्रह्म का अंशरूप मानकर कृष्ण को ही पूर्व ब्रह्म माना है।[2] पुराणों में अवतारों की विस्तृत व्याख्या की गई है और तीन प्रकार के अवतार माने गये हैं– 1–पुरूषावतार 2–गुणावतार और 3–लीलावतार। भगवान् के चार व्यूह

माने गये हैं, श्री वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध। गुणावतरों में विष्णु, ब्रह्मा और रूद्र माने हैं। इसके अतिरिक्त 14 मन्वन्तरावतार होते हैं, जो स्वायम्भुव आदि 14 मन्वन्तरों में प्रकट होते हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को अवतार ही माना है। देवकी श्रीकृष्ण की स्तुति करती हुई कहती है :

''हे आद्य, जिसके अंश (पुरूषावतार) का अंश प्रकृति है, उसके अंश (सत्वादि गुण) के भाग (परमाणु आदि) द्वारा इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हुआ करती है। मैं आपकी शरण हूं। गीता में कई स्थलों पर इस प्रकार के वाक्यों को दुहराया गया है।[3] इस प्रकार गीता और भागवत दोनों में भगवान् श्रीकृष्ण को ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन 6 गुणों से विशिष्ट

1. महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय 339 श्लोक 21–28
2. श्रीमद्भागवत 10 ।85 ।21
3. गीता, 10 ।42

माना है। श्रीमद्भागवत में कुन्ती द्वारा की गई कृष्ण की स्तुति में कृष्ण का स्वरूप एवं भगवान् के अवतार का प्रयोजन बताया गया है। अन्त में कुन्ती कहती है, ''हे भगवन्, कोई लोग कहते हैं कि आपने पुण्य श्लोक राजा युधिष्ठिर का यश बढ़ाने के लिये ही यदुवंश में जन्म लिया.....। जो लोग आपकी प्रेम तथा भक्ति–भावना से भरी हुई अद्भुत लीलाओं को वक्ताओं से सुनते हैं, श्रोताओं को सुनाते हैं तथा स्वयं गाकर और स्मरण करके आनंदित होते हैं, वे शीघ्र ही इस जन्म–मरण–रूपी सांसारिक प्रबल प्रवाह को शान्त करने वाले आपके श्रीचरणकमलों का दर्शन प्राप्त करते हैं।[1]

भागवत में कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं, जैस (1) अद्भुतकर्मा असुरसंहारक कृष्ण (2) बालकृष्ण (3) गोपीविहारी श्रीकृष्ण (4) राजनीतिवेत्ता, कूटनीति–विशारद श्रीकृष्ण (5) योगेश्वर श्रीकृष्ण (6) परब्रह्मास्वरूप श्रीकृष्ण। मुख्य रूप से हम कृष्ण के तीन रूप देखते हैं, (1) महाभारत के कृष्ण (2) गीता के कृष्ण तथा (3) भागवत के कृष्ण। भगवान् के वीरत्व–विधायक स्वरूप के दर्शन महाभारत में, परब्रह्म स्वरूप के गीता में और रसिकेश्वर के भागवत में होते हैं। वैसे तो भागवत में कृष्ण के प्रायः सभी रूपों का विवेचन हुआ है, परन्तु प्राधान्य रसिकेश्वर–स्वरूप का ही है। भगवान् के असुरसंहारक राजनीतिवेत्ता तथा कूटनीतिज्ञ स्वरूप का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में हुआ है। दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में निबद्ध कृष्ण के बाल्यकाल की

असुरों के वध से सम्बद्ध कथाएं भगवान् के बालरूप की कहानियां होने के कारण उनके अलौकिक चरित्र में आती हैं। कंस–वध तक की लीलाएं बाल लीलाएं हैं, इनमें किशोरावस्था की भी क्रियायें आती हैं। उनके राजा पद की प्रतिष्ठा जरासन्ध के युद्ध के अनन्तर द्वारका–दुर्ग–निर्माण–काल से होती है और यहीं से गीता की 'परित्राणाय साधूनाम'' वाली युक्ति की चरितार्थता प्रारम्भ होती है। इस स्कन्ध में कृष्ण के पराक्रम की निदर्शिका वीर–रस–मयी अनेक रोमांचकारिणी घटनाएं हैं किन्तु बीच–बीच में अलौकिकता का भी समावेश है। बाल–लीलाओं को छोड़कर कृष्ण के शेष जीवन–चरित की दृष्टि से भागवत को चार भागों में विभाजित किया जाता है–

1. श्रीमद्भागवत 1 ।8 ।32 ।35

(1) घटनात्मक, (2) उपदेशात्मक (3) स्तुत्यात्मक तथा (4) गीतात्मक।

1. घटनात्मक

श्रीमद्भागवत के वे स्थल घटना–प्रधान स्थल है, जो ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हैं, परन्तु जैसे गोस्वामी तुलसीदार जी मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के चरित्र को चित्रित करे हुए 'रामचरित मानस' में ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नहीं छोड़ते और उसी भावना से अभिभूत होकर अनजाने में ही राम के चरित्र में अलौकिकता का समावेश कर जाते हैं, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भागवत तत्व–निरूपण द्वारा भक्ति रस का परिपाक करना है। अतएव भागवतकार ने घटनात्मक स्थलों पर भी भगवान् के दिव्य मंगल स्वरूप की कई बार स्तुति कराई है–जैसे भीमासुर–वध के समय, वाणासुर–संग्राम के समय तथा वेद–स्तुति आदि। इन घटनाओं में अलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण है, जैसे स्वर्ग से कल्प–वृक्ष लाना, देवकों के मृतक पुत्रों को लाना आदि। ऐसे स्थलों पर कवि की प्रतिभा सजग हो उठती है और वह भगवान् के स्वरूप में इतना तन्मय हो जाता है कि अन्य सब भाव अभिभूत हो जाते हैं तथा हृदयानुभूति रागात्मिका वृत्ति के साथ उन स्तुतियों और स्तोत्रों के रूप में साक्षात् रूप धारण कर लेती है। श्रीमद्भागवत में जहां–जहां भी इन घटनाओं का उल्लेख है, वहीं–वहीं कवि की

इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग में भागवताकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढ़ता ही है।

2. उपदेशात्मक

भागवत के उपदेशात्मक भाग में हमें श्रीकृष्ण योगेश्वर, उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप में मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में दो प्रकार के उपदेश हैं–साधारण तथा विशेष। साधारण उपदेश वे उपदेश है, जो साधु, महात्माओं, गुरूजनों या मित्रों ने दिये हैं। इन उपदेशों का अभिप्राय कर्तव्यकर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवद्भक्ति करना है। विशेष उपदेशों के रूप में वे स्थल आते हैं, जहां उपदेश किसी व्यक्ति विशेष को विशेष रूप से दिये गये हैं, जैसे–उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव को नारद का उपदेश, चतुःश्लोकी भागवत तथा कपिलगीता आदि। ये उपदेश बड़े महत्वपूर्ण है क्योंकि इनमें दो बातों की व्याख्या हुई है–(1) परमतत्व की ओर (2) ज्ञानभक्ति–कर्म की।

3. स्तुत्यात्मक

भागवत की स्तुत्यात्मक भाषा भी बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है। ये स्तुतियां दो प्रकार की हैं– सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियां वे हैं, जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई हैं, कारागार से मुक्त होने के लिए किसी आपत्ति या दैहिक, दैनिक, भौतिक तापों की निवृत्ति के लिए की गई है। निष्काम स्तुतियां दो प्रकार की होती हैं– एक तो वे, जिनमें तत्व ज्ञान की प्रधानता है–और दूसरी वे, जिनमें साधन की प्रधानता है। वेद–स्तुति–तत्व–ज्ञान–प्रधान स्तुति कही जाएगी, क्योंकि इसमें सब तत्वों का पर्यवसान एक ही तत्व में दिखाया गया है। प्रहलाद, अम्बरीष, ब्रह्म, ध्रुव आदि की स्तुतियां साधन–प्रधान कही जायेंगी क्योंकि इनमें भक्त मुक्ति का इच्छुक न होकर केवल भगवान्

के रूप तथा लीला के स्मरण–कीर्तन में आनन्द लेता है। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित, 'भागवत–स्तुति' में इस प्रकार की स्तुतियों का संग्रह है।

4. गीतात्मक

श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। इन गीतों में ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप से द्रवित होता हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतों में पूर्णरूपेण प्रस्फुटित है। ये हृदय के वे स्वतः प्रवाही स्रोत हैं, जिनका अवरोध कवि के वश की बात नहीं थी। उसकी आत्मा की व्यथा एवं अन्तर्वेदना के ये गीत साकार प्रतिबिम्ब है। प्रेम और विरह की भावना से ओत–प्रोत इन गीतों की संख्या अधिक ही है। पॉच गीत गोपियो के तथा एक द्वारिका की कृष्ण–पत्नियों का है। ये छः गीत दशम स्कन्ध में आये हैं। एकादश स्कन्ध में भी दो गीत आये हैं–एक पिंगला का और दूसरा एक भिक्षुक ब्राह्मण का। पिंगला का गीत निर्वेद–गीत है, जो संसार के कटु अनुभवों से उत्पन्न अन्तर्वेदना का अभिव्यंजन करता है। सात्विक और सदाचारी होने पर भी दुनिया के हाथों अपमानित होने वाले ब्राह्मण भिक्षुक के गीत में भी वेदना की झलक है। कृष्ण की पत्नियों का गीत दशम स्कन्ध के 90वें अध्याय में है। उनका मन भगवान् की लीला में इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती है। सांसारिक अनुभवों का ज्ञान लुप्त हो जाता है और आत्म–विभोरता की अनिर्वचनीय दशा में उनके हृदय–ह्रद से अनायास ही भावधारा वह निकलती है। समस्त प्रकृति उन्हें कृष्णमयी लगती है और वे प्रकृति के सब पदार्थों को सम्बोधन करके उनका कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करती है। वे यहां तक भूल जाती है कि कृष्ण उनके समीप हैं।

गोपी–गीतों का वर्णन तो वर्णनातीत हैं। उनके पॉचों गीतों में अनुपम प्रेम की झलक है। प्रतीत होता है हृदय वाणी के साथ लिपटा हुआ चला आया है। गोपियों के गीत में जो रस है,

वह अनुवाद में कभी नहीं आ सकता। उसकी अनुभूति सहृदय व्यक्ति मूल पाठ में ही यथार्थ रूप में कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवत में ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' तथा ''जन्म कर्म च मे दिव्यम्'' आदि की चरितार्थता पूर्णतया हुई। इस विषय को लेकर पण्डितों ने बड़े विश्लेषण और विवेचन किये हैं तथा गीता एवं भागवत के कृष्ण में अभेद स्थापित किया है। विभिन्न पुराणों में श्रीकृष्ण का पूर्ण अवतारत्व सिद्ध होता है और भगवान् शब्द के लक्षणों की संगति पूर्णरूपेण घटित हुई है। कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है–

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः।।

श्रीमद्भागवत पुराण में, महाभारत, गीता तथा कृष्ण–सम्बन्धी अन्य सभी ग्रन्थों में दिये हुए भावों का समन्वय कर लिया है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण पाण्डवों के सखा हैं, जो कुरूक्षेत्र महायुद्ध में नियामक थे और जिनका वीर रूप महाभारत में यत्र–तत्र बिखरा हुआ है। वे गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण हैं, जो साधुओं के परित्राण, पापियों के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं और जो गीता में भक्ति, ज्ञान और कर्म का सामन्जस्य स्थापित कर निष्काम कर्मयोगी के रूप में उपस्थित हुए हैं। वे मथुरा और द्वारका के महावीर, महायोद्धा, राजराजेश्वर कृष्ण भी हैं और गोकुल, ब्रज और वृन्दावन में विहार करने वाले नन्द–नन्दन रसिक शिरोमणि गोपाल कृष्ण भी हैं।

उपर्युक्त विवेचन कृष्ण के स्वरूप को लेकर है। रसखान का काव्य देवता प्रेम है। तथा प्रेम के अधिष्ठान कृष्ण हैं। सांस्कृतिक आयाम में कृष्ण की विवेचना अपने आप में सांस्कृतिक विवेचना है। कृष्ण के व्यक्तित्व से दर्शन और भक्ति के स्रोत फूटते हैं। रसखान के काव्य में कृष्ण की भक्ति भारतीय संस्कृति की उपस्थान बन गई है। उन्होंने कृष्ण के बाल रूप एवं

किशोर रूप का जो अंकन किया है वह अंकन सांस्कृतिक आकाश में इन्द्रधनुष की भांति आकर्षक है जहॉ भी अभिव्यंजना हुई है वहां सांस्कृतिक तत्व स्वतः उभरे हैं।

(ब) रसखान के काव्य में संस्कृति

रसखान के काव्य के तीन मौलिक तत्व हैं। 1. प्रेम 2. सौन्दर्याभिव्यक्ति 3. भक्ति भावना।

प्रेम :– रसखान के काव्य का मूल आधार है। उनका प्रेम तत्व मासल सौन्दर्य से लेकर अध्यात्म के शिखर तक फैला हुआ है। इस प्रेम निरूपण में रसखान अनेक उद्भावनाएं की हैं, यदि जायसी यह कह कर तृप्त हो जाते हैं कि – मानस प्रेम भयउ बैकुंठी। नाहि त काह छार भरि मूठी। प्रेम कारण ही मानव शरीर स्वर्गीय हो जाता है। रसखान कहते हैं–प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप।

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम[1] स्वरूप।

एक ह्वै द्वै यों लसै, ज्यौं सूरज अरूधूप।।

यह अद्वैत नायक और नायिका में भी होता है। आत्मा तथा परमात्मा के मिलन में भी अद्वैत है इसे ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन में समरसता की संज्ञा दी गई है। स्वच्छन्द तन्त्र में लिखा है कि –''जैसे एक नदी में मिलकर समरसता को प्राप्त होती है और समुद्र तथा उस नदी में किसी प्रकार की भी पृथकता या भिन्नता नहीं रहती, उसी प्रकार जब आत्मा परमात्मा भाव को होकर पूर्णतः एक शिव रूप हो जाती है, उसे सामरस्य कहते हैं। इसी भाव को क्षेम राज ने इस प्रकार व्यक्त किया है– समो रसो यस्मिन् स सम रसो लोली भावः। अर्थात् जिसमें समान रस हो ऐसी ललक की भावना को सामरस्य कहते हैं। नेत्र तंत्र में समरसता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है। जिस समय योग यह जानने लगता है कि न तो मैं हूँ, न कोई अन्य है और न ध्येय ही यहॉ विद्यमान है। अपितु उसका मन आनन्द पद में लीन होकर समरसता को प्राप्त हो जाता है उसी अवस्था को सामरस्य कहते हैं। इस विषय में अभिनवगुप्त का मत विशेष उल्लेखनीय है–आनन्द शक्ति विभ्रान्ते योगी समर सो भवेत् आनन्द शक्ति शक्ति से विभ्रान्ति पाने पर ही योगी को समरसता की स्थिति प्राप्त होती है।[2]

1. सं. विद्यानिवास मिश्र : रसखान रचनावली, पृ0 89 (प्रेमवाटिका)
2. स्वच्छन्द तंत्र (भाग 2) पृ0 276–277

बोधसार में श्री नरहरि स्वामी का कथन रसखान के विचार के अति निकट है–[1] जाते समर सा नन्दे द्वैतमप्य मृतेपमम्, मित्रयोरिव दाम्पत्यो जीवात्मपरमात्मनोः।

जिस प्रकार परस्पर अत्यन्त प्रेम वाले दम्पत्तियों का द्वैत दोनों के समरस हो जाने पर आनन्ददायक होता है, उसी प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा के समरस हो जाने पर आनन्द निर्वाध रूप से उत्पन्न होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रेम प्रेमी, प्रेमिका अथवा भक्त तथा भगवान में ही उत्पन्न होता है।

वस्तुतः समस्त मुसलमान कवि प्रेम के कायल रहे हैं, यह उनकी संस्कृति में सामान्यतः पाया जाता है। हिन्दू कवियों ने भी प्रेम की बात कही है किन्तु मुसलमान कवि मांसल सौन्दर्य से प्रेम की बात प्रारंभ करते हैं। राधा–कृष्ण का प्रेम शारीरिक सौन्दर्य से उद्‌भूत होता है। वस्तुतः रूप का वास्तविक मापक कामभावना का आकर्षण है। काम भावना का जितना अतिशय होगा उसकी दृष्टि में कोई विशेष नारी उतनी ही सुन्दर भी प्रतीत होगी। कामोत्तेजना की परिसमाप्ति के बाद उसी नारी का सौन्दर्य व्यक्ति की दृष्टि में कम हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों के इस विचार को अभिनवगुप्त पादाचार्य ने अधिक क्रमबद्ध और तर्क पुष्ट ढंग से पुष्ट किया है। उनका कहना विक्षोभ जन्य सुख का प्रतीक है। संगीत से प्राप्त सुख के सम्बन्ध में भी यही बात कही गई है। 'वीर्य विक्षोभ' के मापदंड से प्राप्त सुख के सम्बन्ध में भी यही बात कही गई है। 'वीर्य विक्षोभ' के मापदंड से एक ओर विषय सौन्दर्य की माप होती है और दूसरी ओर प्रेक्षक की सहृदयता की। सुन्दर से सुन्दर रूप को देखकर जिसका मन रसाद्र नहीं होता वह मनुष्य के रूप में जड़ है। 'वीर्य विक्षोभ' की न्यूनता या तो विषय सौन्दर्य की अपूर्णता का द्योतन करती है अथवा विषयी की क्षुद्र वीर्यता का। अधिक चमत्कार वेश (आनंदानुभूति या रसानुभूति) में निमग्न होने वाली वीर्य विक्षोभात्मा ही सहृदयता है।[2] नयनोयोरपि हि रूपं तद् वीर्य विक्षोभात्मक महाविसर्ग विश्लेषण युक्तया एवं सुखदायि भवति। श्रवणयोश्च मधुरं गीतादि सर्वतो हि चमत्कारे जड़तैव। अधिक चमत्कार वेश एवं वीर्य क्षोभता सहृदयता उच्यते।

1. अभिनवगुप्त : तंत्रालोक, (भाग 1), पृ0 29।
2. बोधसार, पृ0 107 (द्वारिका प्रसाद सक्सेना द्वारा कामायनी में काव्य उद्धृत)पृ0 410
3. अभिनवगुप्त, परात्रिशिका, पृ0 47–49

एक देश के नारी सौन्दर्य में उस देश के निवासियों को जो वीर्यक्षोभ शक्ति दिखाई पड़ेगी वह दूसरे देश के निवासियों को नहीं क्योंकि एक देश की सौन्दर्य कल्पना दूसरे देश की सौन्दर्य कल्पना से भिन्न होती है। सौन्दर्य कल्पना की यह भिन्नता मुख्यतः जलवायु और संस्कृति की भिन्नता पर निर्भर करती है। दो भिन्न जलवायु में पलने वाले लोगों के रूप रंग में ही अन्तर नहीं होता बल्कि उनकी रूचियों में भी भेद दिखाई देता है। सामाजिक परिस्थितियों के बदल जाने से परंपरागत सौन्दर्य कल्पना में थोड़ा बहुत परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन सौन्दर्य परक कम, सज्जापरक अधिक होता है। किसी जाति का प्रतिनिधि 'सौन्दर्य' उस जाति की सौन्दर्य कल्पना का पूर्णतम विकसित स्वरूप उपस्थित करता है। यही कारण है कि सौन्दर्य सम्बन्धी धारणाओं में बहुत ही कम परिवर्तन होता है। किसी विशेष जलवायु में मनुष्य में रहने वाला मनुष्य रूप विशेष से दीर्घकालीन उच्चतम आदर्श मानता है।

प्राच्य स्त्रियों को प्रकृति ने विशाल नेत्रों का वरदान दिया है। ऑखों की कालिमा उनका शोभा विधायक गुण है। इसके विपरीत यूरोप में नीली आंखें कवियों की कल्पना को उत्तेजना देती रहीं हैं। हमारे यहां काले केश सौन्दर्य वर्धक माने गये हैं तो पश्चिम में सुनहले भूरे केश। पीन और कठोर वक्ष प्रदेश की नारी सौन्दर्य की अमूल्य निधि है। किन्तु अफ्रीका की कुछ जातियों में शिथिल और प्रलंब वक्ष सौन्दर्य का चिह्न माना जाता है। यह तो रही प्रेम एवं सौन्दर्य की अन्विति की बात किन्तु यहॉ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी उभर कर सामने आता है कि आखिर प्रेम का आध्यात्मिक रूप लौकिक सोपानों को कैसे पार कर आगे बढ़ जाता है। श्रद्धा और प्रेम दोनों मनुष्य के हृदय में विद्यमान रहते हैं। श्रद्धा एक सामाजिक भाव है और प्रेम वैयक्तिक। श्रद्धेय में किसी विशेष गुण की स्थिति देखकर उसकी महत्ता के प्रति मन में एक विशेष प्रकार का आनंद मिश्रित पूज्य भाव उद्धित होता है। इस भाव में दो प्रकार की विरोधी प्रवृत्तियों का अन्वय होता है। पहली प्रव ृत्ति श्रद्धेय के महल की प्रशंसात्मक भावना से सम्बद्ध है और दूसरी उसके सम्मान पूर्ण डर से। पहली प्रवृत्ति श्रद्धेय की ओर उन्मुख होने को प्रेरित करती है और दूसरी एक संग्रमपूर्ण दूसरी बनाये रखने के लिए बाध्य करती है। एक प्रवृत्ति का आकर्षण मूलक दूसरी वर्जनामूलक। इसके परिणाम स्वरूप श्रद्धेय और श्रद्धालू के बीच एक आदरसूचक दूरी बनी रहती है। प्रेम में आश्रम और आलंबन के बीच दूरी का अन्तर मिट जाता है और अन्ततो

गत्बा दोनों का तादात्म्य हो जाता है। प्रेम राग की सान्द्रता अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई होती है तथा श्रद्धा में राग का विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुंचा हुआ होता है।

रसखान भक्त हैं उनकी भक्ति में श्रद्धा और प्रेम का प्रवाह है अतः यहां श्रद्धा एवं प्रेम की व्याख्या अपेक्षित थी। अब यहॉ प्रेम पर प्रकाश डाला जा रहा है। आचार्य शुक्ल ने भक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है–''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'' जब पूज्य भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो उसकी सत्ता में कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। देवर्षि नारद ने पूजा आदि में अनुराग को भक्ति की संज्ञा दी है।[1] शुक्ल जी की भक्ति भावना मर्यादावादी दृष्टि से सम्पृक्व है। प्रेम की सारी विशेषताएं माधुर्य भक्ति में ही मिलती है। श्रीमद् भागवत में प्रेम को श्रद्धा और भक्ति की मध्यवर्तिनी अवस्था माना गया है। उसके अनुसार पहले श्रद्धा, फिर रति और भक्ति अनुक्रमित होती है। लौकिक प्रेम में भी रति की चरमावस्था में प्रेमी और प्रेमिका पार्थक्य तिरोहित हो जाता है। यहॉ पर इस स्थिति में पहॅुचने के लिए किसी अन्य अवस्था को पार नहीं करना पड़ता।

यहॉ यह जान लेना भी संगत होगा कि प्रेम और प्रेमाभक्ति में अन्तर होता है जीव गोस्वामी ने इस अन्तर को इस प्रकार व्यक्त किया है–[2]

1. प्रेमजन्य आनन्द और प्रेमाभक्तिजन्य आनंद में कोई साम्य नहीं है।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, पहला भाग, पृ0 126
2. डॉ0 बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ0 126

2. प्रेम सुखमूलक और प्रेमाभक्तिप्रियतामूलक।

3. प्रेम के आश्रय आलम्बन इह लौकिक नायक नायिका होते हैं और प्रेमाभक्ति के भक्त और भगवान् श्रीकृष्ण वस्तुतः प्रेमाभक्ति प्रेम का परिष्कृत रूप है। जिस प्रकार कोयले के खदान में

कोयला परिष्कृत होकर हीरा बन जाता है उसी प्रकार परिष्कृत होकर प्रेमाभक्ति में बदल जाता है।

इस तथ्य को इस प्रकार समझा जा सकता है। श्रुतियों में परमतत्व को सत्, अनंत, परमानंद कहा गया है। परमतत्व की आनंदानुभूति और लौकिक आनंदानुभूति में कोई समता नहीं स्थापित की जा सकती। परमतत्व की आनंदानुभूति ज्योति स्वरूप और अखण्ड है जबकि मानवीय आनंदमाया से लिप्त और सीमित है। यद्यपि जीवन को भगवत का अंश माना गया है फिर भी माया से संवृत होने के कारण उसका आत्मज्ञान निःशेष हो जाता है।

उस परमतत्व के साक्षात्कार के आत्यंतिक प्रीति अत्यावश्यक है। उसका साक्षात्कार दो रूपों में संभव है – अस्पष्ट विशेष स्वरूप में और स्पष्ट विशेष रूप में। यह अपेक्षाकृत अधिक श्रेयस्कर है। परम तत्व के सभी धर्मों में 'प्रियता लक्षण धर्म विशेष' का सर्वाधिक महत्व है। इस धर्म विशेष का तात्पर्य है कि वह परमतत्व स्वयं प्रेम करता है और अन्य लोग भी उसे प्रेम करते हैं। लोक ने भी प्रिय को प्राप्त करने के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान करना पड़ता है। मनुष्य जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में प्रेमास्पद वस्तुओं की खोज किया करता है किन्तु इस भौतिक जगत में उसे वास्तविक प्रियवस्तु की प्राप्ति नहीं हो पाती क्योंकि उनकी लालसा का तार नहीं टूट पाता। भगवत्प्रेम प्राप्त करने के अनन्तर ही मनुष्य के मन में और कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा शेष नहीं रहती।

भगवत् साक्षात्कार की दो विधियां हैं–अन्तः साक्षात्कार और वहिः साक्षात्कार। वहिः साक्षात्कार को सभी वैष्णव भक्तों ने एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है।

1. जीव गोस्वामी : श्री भागवत् सन्दर्भ, पृ0 675

लेकिन अवतार के समय अशुद्धचित्त वृत्ति वाले को भागवत का केवल आभास मिलता है। प्रकृत लीला के समय के कंस और शिशुपाल को भगवान का आभास ही मिला था। गीता में श्रीकृष्ण में कहा है कि योगमाया से आवृत्त होने के कारण हम सबको नहीं दिखाई पड़ते–नाहं प्रकाशः सर्वत्र योग माया समावृतः। पर अशुद्धता का निराकरण भगवत्कृष्ण पर ही अवलम्बित है। भगवत का सामीप्य लाभ भक्त का अन्यतम लक्ष्य है। इसीलिए भक्तों ने सामीप्य मुक्ति को मुक्तियों में

सर्वश्रेष्ठ माना है। सालोक्य (समान लोक की प्राप्ति) सृष्टि (समान ऐश्वर्य की उपलब्धि) सारूण्य (रूप की तदाकारता) और सापुज्य (भागवत में विलीनी भवन) का महत्व भक्त की दृष्टि में नहीं के तुल्य है। ज्ञान के क्षेत्र में सापुज्य मुक्ति का सर्वोत्कृष्ट स्थान है और यह ज्ञानियों का चरम साध्य है। लेकिन यहॉ पर भक्त का व्यक्तित्व भगवान में इस तरह लीन हो जाता है कि जैसे पानी में बूंद–बूंद। भक्तों ने इस मुक्ति को निकृष्ट माना है। वे मानते हैं कि जिस मुक्ति में प्रेम के लिए स्थान नहीं है वह तिरस्करणीय है। भक्ति की उपासना करने वाले मोक्ष नहीं लेते। भगवान के प्रति एकांतिक प्रीति महत्वपूर्ण है। इसके दो भेद हैं – जाति प्रीति और अजाति प्रीति।

जाति प्रीति के तीन भेद किये गये हैं – शांत भक्त आदि इनमें भगवत के अनुभव मात्र की निष्ठा रहती है, (2) परिकर विशेषाभिमानिन, इनमें भगवत के सेवन, दर्शन आदि की रागात्मिका वृत्ति होती है और (3) स्वयं परिकर आकांक्षा रहती है। अजाति प्रीति से केवल भगवत प्रीति की बलवनी इच्छा रहती है। अतः इस प्रीति का सबसे अधिक महत्व है।[1] इस क्रम में लौकिक प्रेम उल्लेखनीय तत्व है। जीव गोस्वामी ने प्रीति में सुख और प्रियता दो तत्व माने हैं। मुद प्रमद, हर्ष, आनंद आदि सुख के पर्याय हैं। उल्लासात्मक ज्ञान विशेष का नाम सुख है। प्रियता को उन्होंने विषयानुकूलगत स्पृश कहा है। सुख में आत्मरति प्रधान है और प्रियता में केवल प्रिय का आनुकूल्य अनुस्यक है। सख और प्रियता का जो भेद वैष्णव दार्शनिकों ने किया है वह मनोवैज्ञानिक नहीं है। उपनिषद् का यह वाक्य 'आमनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति' ही सही समाधान प्रस्तुत करता है।

1. डॉ0 बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ0 128

फ्रायड जीवन के मूल में काम भावना (लिबिडो) की सत्ता मानता है। उसके मतानुसार 'लिबिडो' के दो भेद हैं–अहं लिबिडो (इगो लिबिडो) और 'इदम् लिबिडो' (आबजेक्टिव लिबिडो)। रति 'अहं लिबिडो' के अन्तर्गत आती है और श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति आदि इदंलिबिडो, के अन्तर्गत। लेकिन दोनों है लिबिडो ही। कृष्ण को आलंबन मान लेने से ही प्रीति में प्रियता तत्व की कल्पना करनी पड़ी। मनोवैज्ञानिक अर्थ में भक्ति और प्रेम (रति) में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है, भक्ति प्रेम का उदात्तीकरण ही है। डॉ0 बच्चन सिंह ऊपर फ्रायड के सूत्र का प्रयोग कर जो व्याख्या की है वह तार्किक दृष्टि से संगत प्रतीत होती है किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इसे पूरी तरह उचित

नहीं ठहराया जा सकता। हमारी भावनाओं का जब परिष्करण हो जाता है तब उसका विशेष मूल्य हो जाता है तथा गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ $2H_2 + O_2 = 2H_2O$ में केवल हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन का 'कम्पोजीशन' नहीं है प्रत्युत वह जल के रूप में एक पदार्थ है जिसके गुण दोनों गैसों से नितान्त भिन्न है। मनुष्य जब व्यष्टि भावना से ऊपर उठ जाता है तब उसका परिष्करण हो जाता है संस्कृति में हमारे विचारों, भावनाओं का परिष्कृत रूप प्रस्तुत होता है। जब कोई प्रेमी भक्त बन जाता है तब वह आध्यात्मिक व्यक्ति हो जाता है। भगवान का रूप समष्टिगत है व्यष्टिगत नहीं।

जहॉ तक रसखान की भक्ति भावना का प्रश्न है वह वास्तव में कृष्ण के माधुर्य रूप का रसायन है जिससे आत्मा का परिष्करण हो जाता है। रसखान का प्रेम, प्रभु के लिए कण–कण का सान्निध्य चाहता है। गाय, पत्थर, करील के कुंज सभी रसखान के प्रभुमय संस्थान हैं। रसखान की प्रेमाभक्ति सहज और निर्मल है। वस्तुतः उनका प्रेम वासना–पंक से वेदांग, निर्वध, उदात्त और अनिर्वचनीय है। वह चित्त का संस्कार करनेवाला, प्रेमी मन के अहं का विसर्जन करने वाला, स्त्री–पुरूष की सहज प्रणयाभि व्यक्तियों का उदात्तीकृत रूप है, जिसे सात्विक प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है। उनका प्रेम पार्थिव आलम्बन के प्रति पार्थिव आश्रय की वासना मूलक भाविभव्यंजना नहीं है। वह वासनामुक्त शुद्ध राग अथवा शुद्ध प्रीति है। वह सहज इन्द्रिय सुख का अतिक्रमण करने वाला है। अपार्थिक आलम्बन के प्रति पार्थिव आश्रय की प्रणयानुभूतियों की उदात्त अभिव्यक्ति ही रसखान के प्रेम का बीज है। वस्तुतः सगुण, साकार (ब्रह्म) आलम्बन के प्रति ही पार्थिव आश्रय का रति भाव संभव है निराकार के प्रति नहीं। यही कारण है कि सूफी सन्तों और सगुण भक्त कवियों ने अपार्थिव, निर्गुण, निराकार ब्रह्म को सगुण, साकार मानकर ही उसके प्रति प्रेम निवेदन किया है और वास्तव में यह विशुद्ध प्रेम ही रहस्यमयी भक्ति है। यह परमात्मा के प्रति आत्मा का रतिभाव है। अतः पार्थिव जैसा प्रतीत होते हुए अपार्थिव है। इस सन्दर्भ में हम जायसी के काव्य से एक उदाहरण देना उचित समझते हैं–[1]

बरूनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुई अनी।।

उन बानन्ह अस कोजो न मारा। बेधि रहा सागरौ संसारा।।

गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि कै हनो।।

धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहि सब साखी।।

रोवं रोवं मानुष तन ठाढें। सूत ही सूत बेध अस गाढ़े।।

यहां रहस्यवाद की झलक है जायसी ने रूपात्मक अभिव्यक्ति के माध्य से भक्ति भावना को प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार पद्मावती के ललाट को दीप्ति को दिखाकार रहस्यवादी भावना का परिचय दिया है–

मनहुँ लिलार दुइज कै जोती। दुइजहिं जोति कहां जग होती।।

सहस किरन जो सुरूज छिपाई। देखि लिलार सोइ छिप जाई।।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) पृ0 69

यह परमात्मा के प्रति आत्मा का रतिभाव है। अतः पार्थिव जैसे प्रतीत हुए अपार्थिव है।

रसखान इसी अपार्थिव प्रेम के सफल चितेरे हैं। उनके राधाकृष्ण (आत्मा–परमात्मा) प्रेम के आलम्बन हैं। 'प्रेम वाटिका' के मालिन और माली हैं।

प्रेम अयन श्री राधिका–प्रेम–बरन नंद नंद।
प्रेम–वाटिका के दोऊ, माली–मालिन द्वन्द्व।।

प्रेम ही वह परम तत्व है जिसकी अनुभूति पर अन्य सारे अनुभव निःशेष हो जाते हैं और जिसके परिज्ञान पर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता अर्थात् प्रेम, अनुभूति और बोध की चरम परिणति है, चरम सीमा है–

''जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यो जात विसेस।
सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस।।

लोक में प्रेम ही प्रभु है। प्रेम अगम, अनुपम, अमित और जलद गंभीर है। वेद, पुराण आदि सम्पूर्ण साम्प्रदायिक साहित्य प्रेम के मर्म का ही व्याख्याकार है।[1]

रसखान के सांस्कृतिक बोध को समझने के लिए उनके भक्ति भाव का अन्वेषण अनिवार्य है। प्रेम का रसायन उनकी भक्ति भावना में मिला हुआ है। भक्ति भाव के विभिन्न आयामों में संस्कृति के दर्शन होते हैं। रसखान बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और आचार्य विट्ठलनाथ के शिष्य थे कि तथापि उनकी भक्ति भावना उन्हें हद छोड़ बेहद की सीमा तक ले जाती है। आगे हम उनकी भक्ति भावना में संस्कृति अन्वेषण करेंगे।

रसखान के काव्य में सांस्कृतिक निरूपण

रसखान के काव्य में सांस्कृतिक निरूपण के लिए हम रसखान के काव्य के उन पद्यों का विवेचन करते हैं जिनसे कृष्ण के प्रेम, सौन्दयाभिव्यक्ति, तथा भक्ति भावना का चित्रण है ये तीनों प्रायः मिले हुए है कभी–कभी किसी का वर्चस्व है दिखाई देता है किन्तु भारतीय संस्कृति का निरूपण प्रेम सौन्दयाभिव्यक्ति, तथा भक्ति भावना में ही प्राप्त होता है।

1. सं. विद्यानिवास मिश्र : रसखान रचनावली, पृ0 132।

सुजान रसखान

1 यहां रसखान की रचनाओं में संस्कृति का अनुसंधान प्रस्तुत किया है धर्म और सम्प्रदाय की सीमाओं का अतिक्रमण कर रसखान कृष्ण–दीवाने हो गये है। कृष्ण प्रेम के बिना लोक परलोक अकारण हैं। मनुष्य–जीवन व्यर्थ है मानव–योनि तथी सार्थक है जब कृष्ण की लीला–स्थली में जन्म मिले। मानवेत्तर योनियों में जन्म भी मिले तो कोई हर्ज नही, बशर्ते कि कृष्ण की गायों, गोवर्धन पर्वत और यमुना की कछारों और कदम्ब की डालियों में विचरने का अवसर मिल सके। इसी भाव की अनन्यता की अभिव्यक्ति इस सवैया में हुई है। रचानाकार का जीवन–धर्म मात्र लीला प्रभु श्रीकृष्ण का सान्निध्य है। अत्यंत सरल शब्दावली में गहरी भावाशक्ति की अभिव्यंजना कवि के शिल्प–वैशिष्टय की परिचायक है। यहॉ भक्ति का निरूपण है। श्री कृष्ण की भक्ति भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।

(।।) तृतीय पंक्ति में – श्रीकृष्ण प्रेरित ब्रजवाासियों द्वारा इन्द्र की पूजा के स्थान पर गायों की पूजा किये जाने के परिणामस्वरूप पुरन्दर का कुपित हो अति–दृष्टि से ब्रजभूमि को जलमग्न करने का प्रयास और कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को छत्र के रूप में धारण कर ब्रज की रक्षा करने का उपक्रम में अन्तर्कथा का संकेत है। यहां सर्वतोभावेन भारतीय संस्कृति का अंकन है।

2. ब्रज के धन–बाग, गो–ग्वाल, पशु–पक्षी, करील–कुंज, कालिन्दी–कूल– कदम्ब आदि के प्रति कवि की गहरी आसक्ति कृष्ण–प्रेम का ही सहज उच्छलन हैं। आलम्बन हें कृष्ण और ब्रज की सचराचर स्रष्टि है आलम्बन के नाना भावों की प्रतिच्छाया। इसी शीतल छावं में रसखान और उनके आराध्य कृष्ण दोनों का तन–मन शांति पाता हैं। और यही कारण है कि कृष्ण स्वंय अपने ग्वाला रूप पर (लकुटी और कावंरिया धारण किया हुआ रूप) पृथ्वी की सारी सम्पदा, सारा वैभव लुटाना चाहते है। प्रस्तुत पद में –रसखानि' शब्द श्लिष्ठ है जो कृष्ण और रचना–कार दोनों ही पक्षों से समान रूप से जोड़ा जा सकता है। कृष्ण के पक्ष में विचार करें तो कृष्ण (द्वारिकाधीश) रूक्मिणी से अपने ब्रजवास की चर्चा करते हुए स्मति रूप–विधान द्वारा रसमग्न होते है और अपने गोचारण से सम्बद्ध अन्याय वस्तुओं–लकुटी, कामरिया, करील, यमुना, धन–वाजी आदि पर आठों सिद्धियो और नवों निधियों तथा सोने–चांदी के महल अर्थात लोक–वैभव की न्यौछावर कर देना चाहते है। 'रसखानि' को रचनाकार का उपनाम मानकर अर्थ भी किया जा सकता है अर्थात रसखान अपने आराध्य कृष्ण के साधारण ग्वाला रूप पर बलिहारी हैं । उनकी ब्रज–लीला के समक्ष कवि को उनका द्वारिकाधीश का गरिमा और गौरव–शाली रूप, राजस्व की सारी प्रभुता, सारा वैभव तुच्छ प्रतीत होता हैं।

विशेष – (।) सिद्धियों आठ मानी गयी– अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वाशित्व। अणिमा शरीर को अदृश्य बनने, महिमा शरीर का प्राप्ति सब कुछ प्राप्त करने, प्राकाम्य, इच्छा–पूर्ति, ईशित्व प्रभुता प्राप्त करने, वाशित्व वशीकरण की विलक्षणा यौगिक शक्तियां है।

(।।) निधियां नौ मानी गई है– पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द और खर्च। ध्यान देने योग्य है ये सब भारतीय संस्कृति के अंग हैं।

3 प्रियतम कृष्ण से एकात्म होने, तादात्म्य स्थापित करने के अनेक मार्ग हो सकते है। एक है कृष्ण–रूप–धरणता का। प्रीति की यह विलक्षण रीति है। स्वंय कृष्णमय होने की अलभ्य लालसावश सखी के सुझाव पर गोपी कृष्ण की भॉति मोरपंखों का सिर–मुकुट बनाने, गूंजो की माला पहनने, लकुटी लेने, पीताम्बर ओढने, निरंतर मरली धारण करने जैसे सारे उपक्रम करने को सहमत हैं। दुर्लभ आंकाक्षा यही है कि वह कृष्ण की हो जाये।

4 रसानंद के सागर कृष्ण ने कहीं एक बार प्रेयसी का नाम भर ले लिया। तब से उस प्रियतमा के मन में कृष्ण सामीप्य की, उस पीताम्बरी के वक्र–सोन्दर्य से साक्षात्कार करने की अलभ्य अभिलांषा सुगबुगा रहती रही है। संयोगवश उस मनोहारी मनचोर पर नजर भी पड़ गई तभी से वह मन में अटक गया है और ह्रदय विदग्ध हो गया है।

5 श्रीकृष्ण की भक्त–वत्सलता, भक्तों की मान–रक्षा और उनका लीला–विलास अदभुत है। जिस सर्वशक्तिमान प्रभु के अपार गुणों का मान अप्सरा, गंधर्व स्वंय मां सरस्वती और शेषनाग भी नहीं कर पाते जिस ब्रहा के रहस्य को भगवान भूतनाथ और प्रजापति ब्रहा भी नहीं जानते तथा जिसके ध्यान में योगी, तपस्वी, सिद्ध–साधक निरंतर समाधिस्थ रहने पर भी उसे प्राप्त नहीं कर पाते। उसे ग्वालिनें थोड़ी–सी छाछ के लिये छका देती हैं, नाच–नचा देती है, क्योंकि प्रभु प्रेम के वशीभूत हैं।

6 राधा–कृष्ण फाग खेल रहे है। चहुं ओर कूंकम, गुलाल ओर केसरिया रंग की पिचकरी छूट रही है। अदुभुत दृश्य है। मनमोहिनी राधा मौजमस्ती से उल्लासित है। प्रेमी ह्रदय की सारी आकाक्षाओं की तृप्ति से मदहोसी छाई हुई है। राधा आज मनमोही कृष्ण से मनमानी कर सकी हैं, कदाचित इसलिये कृष्ण से ह्रदय–हारण करके जा रही है। होली का त्योहार भारतीय संस्कृति का अंग है।

7 सपत्नीक डाह की पराकाष्ठा है कि कृष्ण का संसर्ग जड़ पदार्थ बांसुरी से भी गोपियां सह नहीं सकतीं। कृष्ण उनके हैं। अहर्निश उन्हीं के साथ रहें।

8 प्रणय–खण्डिता गोपी की कृष्ण अन्यत्र निवास करते हैं। खण्डिता के अन्तर

दाह का सुन्दर वर्णन है।

9 कृष्ण–बांसुरी वादन के विलक्षण प्रभाव की चर्चा है। आज मनमोहन ने विचित्र मायावी ढंग से बांसुरी बजाई है। सचराचर सृष्टि रस–सिक्त हो रही है। इस अदभुत रसमयी ध्वनि को सुनकर गोपियां लोक–लाज और मर्यादा को भूल गई है। प्रेम–रस में सद्यःस्नात राधिका नंदजी के द्वारा पर बार–बार आ जा रही है। आज सम्पूर्ण ब्रज–प्रदेश में ऐसी कौन रमणी है जो बांसुरी के रमणीय प्रभाव से मंत्र–मुग्न न हुई हो। रसिक शिरोमणि कृष्ण की बंशी–ध्वनि में यह कैसी सम्मोन शक्ति है।

10 वात्सल्य–भाव से भावाकुल स्त्री का कथन है। जसोदा द्वारा बाल– कृष्ण का श्रंगार करना और मनोहारी रूप के अवलोकन से उत्पन्न अनुराग का वर्णन है।

विशेष – जसोदा द्वारा बालक–कृष्ण के तेल–उबटन, काजल आदि लगाना और हमेल–हार आदि पहनाना ब्रज की विशिष्ट लोक–संस्कृति को रेखांकित करता है।

11 बंशी बजाते हुए कृष्ण का कटाक्ष करना जादू जैसा प्रभाव डालता है। वैसे ही कटाक्षाघात से आहत राधा तन–मन की सुध–बुध खो अचेतावस्था में पड़ी है। विरहोन्माद असह्म है। सारी गोपियां राधा की जीवन–डोर से बंधी है। कृष्ण दर्शन के अभाव में राधा के साथ ही नंद बाबा की देहलीज पर विष पीकर प्राणोत्सर्ग करने को दृढ़ संकल्प है।

विशेष – यदि शास्त्रीय शब्दावली में विचार करें तो तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में उन्माद और व्याधि नामक संचारी भावों तथा 'जड़ता' नामक विरहावस्था का उन्मेष का वर्णन हैं यह पद्धति भारतीय है।

13 कृष्ण के सलौने रूप–सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन है। गोपी का अपनी सखी के प्रति कथन है। जब से कृष्ण की उस विलक्षण रूप–राशि को देखा है, तभी से उन्माद जैसी स्थिति पैदा हो गई है और लोक–मर्यादा तथा समाज की लज्जा जैसी भावनाओं का विस्मरण हो गया है। अब मैं खूलेआम कृष्ण प्रेम–दीवानी हो गई है। कृष्ण के सुन्दर नेत्र खंजन, मीन और कमल के उपमानों का भीर अतिक्रमण करने वाले है। उनकी भौंहे कमान की भांति वक्र हैं और नेत्र दृष्टि रूपी बाणो से निरंतर सभी को बींधते रहते है। भला इतनी अप्रतिम रूप–राशि के देखकर भी ऐसी कौन स्त्री है जो स्वंय को संभाल सके अर्थात् कृष्ण प्रेम–दीवानी न हो जाए।

(।) खंजन, मीन, सरोज – तीन–तीन उपमानों का सार्थक प्रयोग हुआ है जिसमे नेत्रों की चपलता, स्निधता, बाँकपन, लालिमा आदि का एक साथ अंतर्भाव है। ये सभी उपमान भारतीय संस्कृति के हैं।

14 कृष्ण के रूप जाल में प्राण–रूपी पक्षी का फंसना और तड़पना, ऑख से आंख लड़ना अर्थात् प्रथम दर्शन में ही गम्भीर प्रेम हो जाना और तदुपरान्त बिछोह की आग में आंखो का दिन–रात अश्रु, प्रवाह करना तथा कृष्ण–प्रेस की अधीनता और तज्जन्य विवशता से लोक–लाज का परित्याग करना आदि मनोभावों की सुष्ठु अभिव्यक्ति हुई है।

15 कृष्ण–रूप की दुहाई फिरी है। ब्रज–मण्डल में ढिंढोरा पिट रहा है। नव युवतियों का घर से निकलना दूभर हो गया है। श्रृंगार वर्णन की रीतिकालीन पद्धति का प्रयोग हुआ है।

16 नायिका का सर्वाग ही बगीचे के समान है। उपमा और रूपक अलंकारो का प्रयोग हुआ है। भारतीय पद्धति का ऋंगार वर्णन है।

17 प्रेम–रस में सिक्त गोपी–कृष्ण अथवा राधा–कृष्ण की रति क्रीड़ा का चित्र है। राधाकृष्ण के युगल को प्रगाढ आलिंगन–बद्ध देव देख एक गोपी अपनी सखी से कह रही है। वृक्ष की छाया में वे दोनों अंग–प्रत्यंग से गहरे स्पर्श–सुख में डूबे हुए है। वह राधा प्रियतम कृष्ण के गले में बाहें डालकर काम–रस–रंग में भीगी हुई है। वे बाहु–पाश में एक–दूसरे

को बांधे कामासक्त वार्तालाप और क्रीडाओं में निमग्न हैं। प्रेमी–युगेल रति–क्रीड़ा का हृदय से आनन्द भोग रहा है। प्रियतम प्रियतमा के स्वर्ण आभा युक्त कुम्भ के समान सुडौल कुचों का और उसके अधोवस्त्र का स्पर्श कर नीवी–संधान करने का जब–जब प्रयास करता है तब–तब सम्भोग–सुख मं अंतिर्लिप्त नायिका नहीं–नहीं शब्द का उच्चारण करती है। उपर्युक्त वर्णन भारतीय संस्कृति की परम्परा का है।

विशेष – ; पद्ध अन्तिम पंक्ति का भाव–साम्य रसिक सम्प्रदाय के एक कवि की, इन पंक्तियों दृष्टव्य हैः यथा –

'' नीवी करखत वरजति प्यारी,

रस लम्पट सम्पट कर जोरत,

पद परसत पुनि–पुनि बलिहारी। ''

इसी भांति –

'' हाथन सौं गहि नीवी कह्यो पिय,

नाहीं जु नाहीं जु नाहीं जु नाहीं।''

(हरिश्चन्द्र)

यहॉ भारतीय संस्कृति में प्रेमनिरूपण का निदर्शन है।

20 कृष्ण–प्रेम से सम्पूर्ण ब्रज आच्छादित है। ब्रज की सभी स्त्रियां अपने प्राण कृष्ण के ग्वाला–रूप पर न्यौछावर करती हैं। पद–मैत्री और अनुप्रास की छटा निराली है।

21 ब्रजराज के प्रेम का डंका बजा हुआ है। यह प्रेम सभी को पराभूत कर देता है। अतः एक गोपी दूसरी गोपी से बाहर दही–दूध बेचने को कहती है ताकि रसिक शिरोमणि से भेंट न हो और व्यर्थ में अंखियां उस प्रेम प्यासे के रूप को प्यासी न बन जायें।

22 कृष्ण की विलक्षण रूप–राशि पर मुग्ध गोपी का सखी से कथन है। कृष्ण के मोर–पंखी मुकुट में मोर पंख का चंदवा शोभायमान है और सुन्दर पगड़ी भी सिर पर शोभित हो रही है। वक्ष पर वन माला धारण किये तथा मस्तक पर गोज लगाये हुए उस सलौने रूप को देखकर मैं बेसुध हो गई है। इतना कहकर गोपी ने नेत्र बन्द कर लिए और घूघंट खींच लिया। सखी के बार–बार कहने पर भी वह नेत्र नहीं खोलती क्योंकि मनमोहन की जो रूप–छटा मानस–नेत्रों में समाई हुई है, उसे नष्ट नही करना चाहती।

विशेष –(।) पूर्वराग की स्थिति है। मुग्धा नायिका का संज्ञालोप होना पूर्वराग की पराकाष्ठा है।

(।।) सखी के बार–कहने पर भी घूघंट और नेत्र न खोलना मुग्धा की प्रेमासक्ति और लोकपाल का प्रतीक भी है।

(।।।) नेत्र न खोलना उस स्मृति रूप–विधान में डूबे रस–साधिस्थ मन को चित्रित न करने के कारण भी हो सकता है।

23 कृष्ण की रूप–माधुरी (सुन्दर घनी भौहें एवं बौरानियां, लाल अधर, सुंदर कपोलों से क्रीडा करते कुण्डल आदि) को देखकर गोपियां बेहाल है। उन्हें तनक की सुधि नहीं, मार्ग नहीं दिखाई देता, राह भूल गई हैं, शारीरिक नियन्त्रण खा गया है फलतः सिर रखी दधि की मटकी भी गिरकर टूट गई है और बात यहां तक ही नहीं उनका हृदय कृष्ण पर ऐसा रीझा है कि नेत्रों से लाज का नाता ही टूट गया है। अर्थात प्रेम के प्रबल झंझावात से धराशायी होकर लोज–जाल का शीशा ही चकना–चूर हो गया है। अब उन्हें परिजनों और पुरजनों की परवाह नहीं हैं। वे कृष्ण दीवानी हैं। दीवानों का समाज से क्या संबंध, लोक–लाज से क्या नाता?

विशेष –(।) रसात्मक बोध की दृष्टि से उक्त पद में प्रत्यक्ष रूप–विधान द्वारा रसानुभूति की ओर संकेत है। कृष्ण के प्रत्यक्ष रूप को देखकर गोपियों को योग–क्षेम का ज्ञान नहीं रहता। भक्ति

भावना का निरूपण है। शुक्लजी के शब्दों में वे हृदय की मुक्तावस्था वाली स्थिति में पहुॅच गई हैं।

(।।) भाव–साम्य की दृष्टि से मीरा की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

'' छोड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।

संतन ढिंग बैठि–बैठि लोक लाज खोई। ''

27. रसखान प्रभु की प्रेमाधीनता का वर्णन करते हैं। उस निराकार गुणा–तीत ब्रह्म को वेदों–पुराणों आदि में ढूंढ़ा। उसका लीला–गान साम्प्रदायिक– धार्मिक साहित्य में खोजा। वेद–ऋचाओं को बड़े मनोयोग से सुना परन्तु वह प्रेम–प्रभु इन्द्रियातीत ही रहीा। उसकी तलाश में जगह–जगह भटकता फिरा, किसी ने उसके स्वस्प और स्वभाव का परिचय नहीं दिया। ब्रह्म की इस अकारथ तलाश से थका रसखान प्रेम भक्ति से जब परिचित हुआ तो उसेन विचित्र रूप में उस पार ब्रह्म परमेश्वर को पाया। देखा कि वह निराकार प्रभु साकार हो कुंज–कुटीर में प्रेम–देवी राधिका के पैर पलोट रहा है।

विशेष – (।) ज्ञान से ऊपर भक्ति को प्रतिष्ठित कर भक्त कवि रसखान प्रभु को प्रेमाधीन प्रमाणि करते हैं। भारतीय संस्कृति का यहॉ निदर्शन है।

59. गोपी राधा–कृष्ण–प्रेम की चर्चा अपनी सखी से करती है। इन दिनों राधा– कृष्ण की प्रेम उन्मत्ता अद्‌भुत है। दोनों समाज की मर्यादा का परित्याग कर एक–दूसरे पर प्रेम प्रदर्शित करने से नहीं चूकते। यह प्रेम–संबंध क्या छिपाये से छिप सकता है? क्चा चन्द्रमा को हथेलियों में बाँधकर छुपाया जा सकता है? आज ही यमुना तट पर दोनों मिले। एक दूसरे को देखा और मुड़कर मुस्कराने लगे। तदुपरान्त ऐसे–दीवाने हुए कि पैर पड़–पड़ कर एक दूसरे पर बलिहारी होने लगे। प्रेम की तन्मयता तो देखो कि राधा गगरी उठाना भूल गई है और कृष्ण गायों को चराना।

<u>विशेष –</u> अंतिम दो पंक्तियों का भाव–साम्य की दृष्टि से महाकवि देव की निम्न पंक्तियाँ उल्लेख है। राधा कृष्ण की नई–नई प्रेम–प्रीति में फंसने पर क्या दशा है? दोनों पर प्रेमान्माद छाया हुआ है?

'' दुहुन को गुन रूप दोऊ बरनत फिरैं,

घर न थिरात, रीति नेह की नई नई।

मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय,

राधा मन भयो मोहि मोहन मई भई।''

यह पूरा वर्णन भारतीय संस्कृति का निरूपण है।

64. रसखान के रसखानि (कृष्ण) आनंद के पारावार हैं। कवि को जीवन और जगत में उनके आगमन की निरंतर प्रतीक्षा है। कवि के प्रतीक्षा–रत मानस में उसका आगमन दृश्य कितना हृदयहारी है और कैसी प्रेम–वृष्टि करने वाला है? वह गायें चराकर आ रहा है। उसकी केशराशि गो–धूल–धूसरित है। आगे गायें हैं। पीछे प्रेमी ग्वालों की टोली है। उसकी बांसुरी की ध्वनि जितनी विमोहित करने वाली है उतनी ही सम्मोहक उसकी तिरछी चितवन ओर मंद–मद मुस्कान है। वह आनंद–राशि कृष्ण अब यमुना के किनारे कदम्व–वृक्ष के पास आ गया है। उसका पीताम्बर फहरां रहा है। वह प्रेम–रस की वर्षा करने वाला, तन–मन के ताप को बुझाने वाला, नेत्रों और प्राणों को आकर्षण–पाश में बांधने वाला, रसखानि (आनंद का पारावार या भण्डार) ब्रजेश्वर कृष्ण आ गया है।

विशेष – (1) जीवन और जगत में कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा–रत है कवि, ताकि समजा का वैमनस्य, दुख–दारिद्रय मिट सके और समाज में प्रेम एवं सौहार्द की वर्षा हो सके।

87. कृष्ण की छेड़छाड़ के प्रत्युत्तर में गोपी कहती है कि कान्ह मेरा चीर छोड़ दो । मैं तुम्हें दूध–मक्खन पेट भर खिलाने को तैयार हूं किन्तु तुम गोरस के बहाने जिस रस को चाहते हो वह रस तुम्हें कदापि नहीं मिलेगा अर्थात तुम्हारी रति–कामना कभी भी पूरी न हो सकेगी।

92 राधा–कृष्ण के संयोग–श्रंगार का सुन्दर चित्र है। कृष्ण प्रियतमा राधिका के साथ आनन्दपूर्वक विहार कर रहे हैं। उनके पारस्परिक आलिंगन स्पर्श से राधा की साड़ी के फुंदने टूट–फूट कर छितरा रहे हैं। उस प्रगाढ़ आलिंगन की कसमसाहट से नवयौवना राधा सिहर–सिहर उठती है। उनके नेत्रों की कोरों से गहन अनंग–रंग उद्दीप्त हो रहा है। रति–रंग–तरंगिणी इस उद्दाम आवेग से बह रही है कि उसके किनारे पर खड़ी ब्रज–वनिताएं कांप रही हैं अर्थात राधा–कृष्ण के गहन प्रेम–प्रंसग से विचलित हो उठी हैं। राधा–कृष्ण को इस प्रकार आनंद–उन्मत देख कर अन्य विरही जन बिछोह की आग से ओर अधिक उत्तप्त हो रहे है। भारतीय संस्कृति का यहॉ निरूपण है।

105. कृष्ण–भक्ति के अभाव में संसार की सारी प्रभुता, सारा वैभव, सारी साधना निष्फल और अकारथ है। यदि मनुष्य सच्चे हृदय से भगवद भक्ति और कृष्ण प्रेम में निमग्न नहीं होता तो उसका जीवन निष्फल है। रसखान मनुष्य मात्र को प्रबोधित करते हुए कहते हैं कि कृष्ण प्रेम के बिना ये साने के महल जो साल मोतियों की माला से सदा देदीप्यमान रहते है और जिनकी आभा आँखो को चकाचौंध कर देती है, व्यर्थ हैं। यह अप्रतिम प्रभुत्व जिसके समक्ष बड़े–बड़े राज राजेश्वर भी प्रतिहारों की भांति उपस्थित रहते हैं, प्रभु प्रीति के बिना यह प्रभुत्व भी निस्सार है। रसखान कहते है कि मनुष्य का सारा धर्म–कर्म (गंगा–स्नान तथा मुक्त हस्त से मोतियों का दान), वेद–पाठ, ज्ञान–ध्यान तथा चिन्तन अकारथ है। ये साधनाऐ निष्फल है। यदि वह पीताम्बरधारी कृष्ण प्रेम का दीवाना नहीं है।

विशेष – रसखान सच्चे अर्थो में भक्त–कव हैं, इसलिए ज्ञान– ध्यान कर्मकांड की असारता पर बल देते हैं और कृष्ण–प्रेम (भक्ति) को ही सर्वोपरि मानते हैं।

130. भक्ति–भाव से ओत–प्रोत कवि अपने आराध्य कृष्ण से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, मुझे निरंतर अपन नाम–स्मरण की शक्ति दो ताकि मेरी जिह्म उत्तम रसनंद में डूब जाये। भगवद भक्ति से बड़ा कोई आनन्द इन्द्रियों के लिए हो ही नहीं सकता। हाथों को कुजं–कुटीर (आपका निवास स्थल) में झाड़ू लगाने के सर्वोतम कार्य में प्रवृत्त होने की शक्ति दो। अणिमा आदि आठों सिद्धयों का सुख मुझे तभी मिलेगा जब मेरा शरीर ब्रज–धूलि से धूसरित हो सकेगा। हे प्रभु यदि आप मुझे विश्राम (खास निवास) ही देना चाहते हों तो मुझे अपनी क्रीड़ा–स्थली (ब्रज–भूमि), कालिंदी के कूल पर तथा कदम्व की डालों के नीचे निवास देने की परम कृपा करें। यहां भक्ति भावना का प्रकाशन है।

138. गोपियों के कृष्ण–प्रेम ओर बिछोह का वर्णन है। गोपी का कथन है कि जब से कृष्ण इस मार्ग से गोवर्धन सम्बन्धी लोकगीत गाते हुए निकले हैं तब से लोकलाज और सामाजिक मार्यदा की कितनी ही दीवारें खड़ी करूं, सब निरर्थक हैं, क्योंकि हृदय उस बंसी वाले पर अनुरक्त हो गया सो हो गया। अब मन वश में नहीं । अब तो प्रेम हो ही गया है

लोग परिहास करें, निन्दा करें, मेरे प्रेम–कर्म पर हंसे तो मुझे कोई परवाह नहीं। पर दुःख कातरता नहीं है लोगों में, वे दूसरे हृदयगत दाह को नहीं जानते । मेरी अन्तःवेदन तो वही जान सकता हे जिसके हृदय में रसखानि (आनन्द के भण्डार कृष्ण) बसे हुए हैं अथवा जो कृष्ण प्रेम में मेरी ही भांति मर्मान्तक वेदना सह रहा हो और मेरी ही भांति मन की आसक्ति के हाथों विवश हो। यहॉ भक्ति भावना भारतीय संस्कृति की अंग है।

142. बिछोह की आग में झुलसी गोपी कृष्ण आगमन के समाचार से इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाती है जैसे बुझते हुए दीपक की लौ (बत्ती) को ऊपर बढ़ा दिया गया है । मनमोहन कृष्ण के वियोग से उत्तप्त गोपी के शरीर की धवल कांति द्यूतिहीन और मलिन हो रही है। हृदय की विरहाग्निसे उसका मुख–कमल मुरझा गया है। विरह की ऐसी ही दशा में प्रियतम कृष्ण के आगमन का समाचार मिलते ही मुरझाई देह और मलिन देह यष्टि खिल उठती है। आतंरिक उल्लास अन्य वक्ष ऊभ–चूभ करने लगता है । फलतः अंगिया की तनी कसने और चटकने लगती है। शरीर की आभा इस भांति प्रकाशित हो उठती है मानो दीपक की लौ बढ़ाने से सर्वत्र प्रकाश फैल गया हो।

155. कृष्ण के अलौकिकत्व, उनके मायावी, निराकार और साकार स्वरूप का एक साथ ही वर्णन है। गोपी का कथन हैं। जिस निराकार परम प्रभु के ध्यान में स्वंय देवाधिदेव महादेव शिव निरंतन निमग्न रहते हैं उस लीला प्रभु सा महान इस ब्रह्मांड में कोई दूसरा दृष्टिगत नहीं हो सकता। परन्तु आश्यर्य यह है कि वही अरूप, अदृश्य, निराकार ब्रह्म बालक के रूप में विद्यमान है और उसका स्वरूप कुछ अदभुत–सा है। कवि चमत्कृत है। इस दृश्य का वर्णन उसकी सामर्थ्य में नहीं । इसलिए गोपी से इस रूपाकृति का वर्णन नहीं हो पा रहा है,

कुछ कहते बनता ही नहीं। यह विलक्षण कुतूहल है कि निराकार, गोतीत और महाविराट पुरूष (प्रभु) जो सम्पूर्ण स्रष्टि का रचानाकार है, आज नंद जी के आंगन में बालक कृष्ण के रूप में मिटटी खा रहा है। यह वर्णन पुराण संवलित है।

164. ग्वालों के श्रृंगार की चर्चा करते हुए गोपी कहती है कि आज सभी ग्वालों की पगड़ियाँ अत्यन्त सुन्दर लाल रंग की हैं। सभी के वस्त्र नाना प्रकार के इत्रादि से सुगंधित हैं। सभी के अंग–प्रत्यंग अन्यान्य प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं और सभी की गर्दनों में मोतियों की मालायें शोभा पा रही हैं। किन्तु साधारण वेश में ही कृष्ण सबको सम्मोहित किये हुए हैं। उस ग्वाल–मंडली में वे इस प्रकार शोभित है जैसे वन में सिंह। विशेष –

(i) रसखान के जीवन को रेखांकित करने की दृष्टि से यह पद महत्वपूर्ण है। कदाचित रसखान ने अपने यौवन–काल में राज दरबारों का वैभव और सुख देखा–भोगा था उसी की ध्वनि प्रथम तीन पंक्तियों में है।

187. गोपी अपनी सखी से कहीती है कि कल रसखानि (कृष्ण) मुरली बजाते हुए मेरा नाम भर लिया था, तभी से मेरी सास शत्रुवत व्यवहा कर रही है। मुझे दरवाजे पर झॉकने भी नहीं देती। सर्वत्र अपयश (बदनामी) हो रहा है किन्तु मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मात्र लालसा इतनी है कि प्यारे कृष्ण को ऑख भर देख पाती। देखने पर (सांस आदि) किसी का प्रतिबंध न होता। यद्यपि वह रसनिधि कृष्ण तो राह से गुजरता ही है और राह में ठिठक भी जाता है। परन्तु मेरा उसे देखना प्रतिबंधित है और मार्ग में उसके रूकने भर से रास्ता भी रूक जाता है, फिर कैसे देख पाऊं? अर्थात मार्ग से प्रेमी–प्रेमिकाओं का जमघट जो इकटठा हो जाता है फिर उस रसवारे पर दृष्टि पड़े तो कैसे पड़े?

215. गोपियों और राधा के साथ कृष्ण होली खेल रहे हैं। राधा के साथ फाग खेलन की प्रक्रिया में परस्पर सान्निध्य बढ़ने से अनुराग ओर अधिक घनीभूत हो रहा है। दोनों आनंद की अठखेलियां कर रहे है। कमल के समान सुन्दर आनन्द वाली राधा हाथ में कुकुम लेकर प्रियतम कृष्ण के नेत्रों (मुंह) पर लगाने की धात में है। गुंलाल फेंकने का अवसर ताक रही है। बड़ा ही मनोहारी दृश्य है। कवि उत्प्रेक्षा के द्वारा गोपियों ओर कृष्ण की फाग–लीला का रेखांकन प्रकृति से सादृश्य उपस्थित करके करता है। गुलाल की धूल चहुं ओर उड़ रही है। ब्रजबालाओं की देहयष्टि, उनकी अप्रितम रूप–राशि इस तरह चमक रही हैं मानो सावन की सांझ में लोहित गगन हो और चारों दिशाओं में चपला

(बिजली) चमक रही है। कुंकुम एवं गुलाल का होली में प्रयोग भारतीय संस्कृति का अवयव है।

(2) गुलाल की धूंधर (धूल) के मध्य गोपियों के शारीरिक सौन्दर्य को रूपायित करने हेतु रचानाकार ने सावन के महीने में सूर्यास्त के बाद छायी हुई लाालिमा तथा चारों दिशाओं में दामिनी की द्युति को सादृश्य के रूप में प्रस्तुत किया है। यहॉ रचनाकार का उद्देश्य मात्र पार्थिव साम्य को रेखांकित करना नहीं वरन प्रभाव–साम्य को प्रस्तुत करना भी है। क्योंकि फाग की गुलाल–गर्द में गोपियां थिर नही हैं, चलायमान हैं। उनके इसी चपल सौन्दर्य की तुलना चपला (विद्युत) से की गई है। सादृश्य–विधान का सुष्ठु प्रयोग है। यह प्रयोग भारतीय संस्कृति का अंश है।

217. सखी राधा से उसके सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहती है कि हे राधिके! यदि तू दिन में घर से बाहर कहीं निकलती है तो सूर्य ठहर जाता है क्योंकि एकटक तेरे सौन्दर्य को ही देखना रहता है। परिणामस्वरूप रात्रि नहीं होती और बटोही (राहगीर) को विश्राम नहीं मिलता। इसी भांति रात्रि में भी दशा कुछ अच्छी नहीं क्योंकि तेरे रूप–लावण्य पर मुग्ध रसलोभी चन्द्रमा तेरे आंगन से टलता ही नही और रात्रि समाप्त नहीं होती। फलतः विरहदग्ध प्रेमी और अधिक त्रस्त होते है। इधर वायु (पवन) की दुर्दशा है क्योंकि वह दिन में तो चलता ही है रात्रि में भी नहीं ठहर पाता। विवश है। यह गंधलोलूप पवन तेरे शरीर की सूवास के कारण मार्ग चलना दूभर हो जाता हैं।

विशेष –(1) समग्र पद में अतिशयोक्ति के साथ ही ब्याज स्तुति अलंकार भी है।

राधा की रूप–राशि से प्रकृति भी प्रभावित है। यहॉ राधा का संस्कृति से अन्वय हो गया है।

226. कृष्ण–बिछोह में गोरी विचित्र विरहानल से जल रही है। इस कामांग्नि और विरहाग्नि से शांति पाने हेतु गोपी यमुनाके जल में प्रवेश करती हैं। किन्तु विरहाग्नि के प्रबल ताप से जमुना–जल सूख जाता है और मछलियाँ भुनकर जमुना–तल से पाताल में गिर जाती हैं

क्योंकि विरह की अग्नि से जमुना जल तो सुख ही गया साथ ही उत्तप्त होने से तल के रेत में भी दरारें पड़ गई। यह अग्नि यहीं शामिल नहीं होती। पाताल–लोक भी इसकी जलाने वाली वियोगाग्नि, गोपी कहती है, तभी शांत होगी जब मनमोहन उसे आलिंगन बद्ध करेंगे, उसके हृदय से लग जायेंगे। प्रिय–मिलन से विरह–उत्ताप शामिल होगा और प्रकृति शीतल एवं शान्त है।

विशेष – विरह का रीतिकालीन ऊहात्मक वर्णन ।

244 कृष्ण–छवि, कृष्ण के कल्पित रूप–विधान को प्रस्तुत करने का प्रयास है। कृष्ण देर–सबेर गायें घेरने या चराने जाते हैं उस समय उनकी शोभा देखने योग्य होती है। विशेष रूप से गौचारण के समय उनका लाठी घुमाना, उनका भूकुटि–विलास, तीक्ष्ण, कटाक्ष–पात और भंगिमा युक्त ढंग से चलना तथा बांसुरी से मधुर संगीत की तानें छेड़ना आदि अत्यन्त शोभादायक होते है। यही नहीं सिर पर बांकपन से धारण किया हुआ उनका मोर–मुकुट तथा चटकीला लटकता हुआ उनका पीताम्बर विलक्षण शोभा की स्रष्टि करते है।

260. राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है। गोपी का सखी के प्रति कथन है। वृषभान की पुत्री राधा के उज्ज्वल रूप का वर्णन तो स्वय कृष्ण भी अपने श्री मुख से नहीं कर सकते। अर्थात राधा का धवल रूप अवर्णनीय है। दूसरा अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है कि राधा के मुख की श्री (शोभा) का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसकी मुख–कांति अत्यन्त प्रकाशवान है। समग्रतः राधा का रूप–सौन्दर्य अकथनीय है, वर्णनातीत है। फिर मनुष्य की तो बिसात ही क्या है? उसमें इतनी भाव एवं रूप–बोध शक्ति कहां है? वह तो अनुपम रूप पर मग्न ही हो सकता है। उसके लिए जैसे नक्षत्रों की अनुपम प्रभा सम्मोहित करने वाली है, उसी प्रकार राधा सौन्दर्य चमत्कृत करने वाला है। उस गहन रूप–राशि का समग्र अवबोध सम्भव नहीं वह सौन्दर्य मन्त्रमुग्धकारी है। बोध–गम्य नहीं। बुद्धि और कल्पना द्वारा अगम्य राधा की रूप–राशि को, उनकी रूप–माधुरी को रेखांकित करने हेतु उत्प्रेक्षा का सहारा लेते हुए कवि कहता है कि राधा के मस्तक पर सिन्दूर का

जो सुन्दर लाल टीका लगा हुआ है मानो चन्द्रमा की गोद में मंगल सुशोभित हो। ग्रहों का विवेचन भारतीय संस्कृति का अंग है।

'' दान लीला ''

पद संख्या

11. दान लीला के ग्यारह पदों में अधिकांश राधा–कृष्ण अथवा गोपी–कृष्ण की प्रेम–कलह से सम्बद्ध हैं। कृष्ण गोरस बेचन जाती गोपियों की निरन्तर छेड़ते हैं। उनसे कर रूप में रसानंद प्राप्त करना चाहते हैं। यही पारस्परिक प्रेम–विग्रह, उपालम्भ आदि अति सरल शब्दावली में दान लीला में वर्णित हैं। दान का, कदाचित, अर्थ रति–दान अथवा प्रेमानंद–दान से ही है। प्रस्तुत पद में भी गोपी उपालम्भ भरे स्वर में कृष्ण को छिड़क रही है। हमने तो सुना था बाबा नंद के घर नौ लाख गायों हैं? उनके तुम प्रिय पुत्र होकर भी गोरस मांगते फिरते हो। नन्द नौ लाख गायों के दूध –दही से भी तुम्हारी तृप्ति नहीं होती ? प्रतीत हेाता है कि गोरस तो बहाना है और तुम्हारा सब वार्तालाप मिथ्या है। तुम्हारा उद्देश्य गोरस प्राप्त करना नहीं वरन स्त्रियों से तुम कुछ और ही रस प्राप्त करना चाहते हो। तुम्हें लज्जा नहीं आती। लोक–मर्यादा को ताक पर रखकर तुम पराई स्त्रियों का मुॅह ताकते फिरते हो। कुछ तो गम्भीरता धारण करो। अपनी नहीं तो दूसरों की लाज की परवाह करो। परिजनों की शर्म करो। अब तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम यहां से अपने घर या वृन्दावन कहीं भी चले जाओ। अकारथ अपना अपयश न करो ।

'' स्फुट पद ''

यद्यपि इन पदों की प्रामाणिकता संदिग्ध है, तथापि इनके कथ्य और शिल्प से ये रसखान विरचित ही प्रतीत होत हैं। इन पांच पदों में से प्रथम दो कृष्ण ओर गोपियों की पारस्परिक प्रेममय छींटाकशी से और तीन फाग–वर्णन से सम्बन्धित हैं। व्याख्या की दृष्टि से अत्यन्त सरल है।

पद संख्या – 35 किसी गोपी का अन्य गोपियों से कथन है। कृष्ण आज उसी दिन की वेशभूषा में गोपियों की सुन्दर मण्डली के साथ आकर्षण भरे गीत गाते फाग खेलन को आये हैं। अतः हे सखियों! अब परिजानों (सान, ननद आदि) की परवाह न करके फाग खेलन को तैयार हो जाओ। लोक–लाज की चिन्ता छोड़ो। मनमोहन के मोहक स्वरूप के दर्शन कर अपनी ऑखो को सफल बनाओ। क्योंकि कृष्ण–दर्शन ही चक्षुओं और दृष्टि की सही अर्थो में सफलता है, सार्थकता है। उन नेत्रों की ही ज्योति सार्थक हे जो कृष्ण–रूप को देखते है। तभी व्रषभानु कुमारी राधा कृष्ण मुरली का मनोरम संगीत सुन हँस पड़ी। कुल मर्यादा का परित्याग करने वाली राधा के हास्य के प्रत्युत्तर में कृष्ण भी हँस पड़े।

" प्रेम वाटिका "

प्रेम वाटिका में 53 दोहे संकलित हैं। मूल विषय है प्रेम। प्रेम क्या है? कहां जन्म लेता ? प्रेम का स्वरूप और क्षेत्र क्या है? आदि। अन्यान्य प्रसंगो में प्रेम को रेंखांकित करने का रचानाकार का प्रयास अनुपम है। इस रचना के अधिकांश दोहों का सार इस प्रकार है। प्रेम वाटिका के माली हैं लीला पुष्षोत्तम श्री कृष्ण ओर मलिन हैं राधा। वस्तुतः राधा ही प्रेम का मूल स्त्रोत या भण्डार हैं। प्रेम की चर्चा तो सांसारिक मनुष्य करते हैं किन्तु उसके रहस्य को कोई नहीं जानता और यदि प्रेम के रहस्य को जान लिया जाये तो रोना किस बात का? प्रेम (ब्रह्ा की भांति) अगम, अनुपम और अमित है। यह वह सागर है जहां एक बार प्यास पहुंच जाए तो उसे अन्यत्र जाने की आवश्कयता नहीं रहती है। यह वह वारूनी है जिसे पान कर वरूण जलधीश हो गये और शंकर विश्व–पूज्य हो गये।

प्रेम कमलतंत से भी क्षीण और तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है रसखान के काव्य से जो पद्य उद्घृत किये गये हैं उनमें सांस्कृतिक तत्वों के रूप में आये हैं। भगवान कृष्ण का जो रूप वर्णन मे आया हैं वह भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधित्व का संस्थान है। इसलिए पहले खण्ड में श्रीकृष्ण के रूप का अनुसंधान किया गया है। भागवत का यह कथन कि हे भगवान जो भी जातियॉ (हूण,किरात,शक, शिथियन,पवन आदि) भारत में आयी वे आप का स्पर्श पाकर पवित्र हो गयी। यही भारतीय संस्कृति का समन्वयवाद है। रसखान जो यवन है वे कृष्ण की लीला कर

जो चित्रण प्रस्तुत करते है वह स्तुत्य है। भारतीय संस्कृति का निरूपण वाललीला, प्रेम लीला के रूप में प्रकाशित होता है। भाषा, प्रतीक,अर्थ,दर्शन सभी में संस्कृति के अभिलक्षण स्वतः स्फुरित होते है। ब्रज भूमि वन पहाड़, हवाऐं सभी में भारतीय संस्कृति का संगीत सार है। प्रेम–वर्णन विरोधमूलक उक्तियों से किया गया है। उनकी दृष्टि में प्रेम का मार्ग अत्यंत सीधा भी है ओर टेढ़ा भी। किन्तु विधि–निषेध की भावना का विरोध करता है प्रेम। लोक और वेद की सभी मर्यादाओ का अतिक्रमण करता है प्रेम। इस प्रेम पंथ में अज्ञान का अंधकार कहॉ ? यह तो अनवरत स्वंय प्रकाश पंथ है। प्रेम,ज्ञान, कर्म, उपासना तथा नाना पुराण निगमागम का सार है। मनुष्य की सारी वासनाओं (काम,क्रोध,मद,लोभ) आदि को उदातीकृत करता है प्रेम ही ब्रह्मानंद है। मित्र,पुत्रादि के लौकिक स्नेह में वह शुद्धता नहीं जो भगवद प्रेम में है। भगवद प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और कोमल है। प्रेम ही ईश्वर का प्रतिरूप है और प्रभु प्रेमस्वरूप ही है। दोनों में पार्थक्य का कोई प्रश्न ही नहीं। दोनों एक–दूसरे से इस प्रकार अभिन्न है, जैसे सूरज से धूप और सूरज। यथा –

'' प्रेम हरी को रूप है, त्यौं हरि प्रेम सरूप'

एक होई द्वैयों लसैं, ज्यौं सूरज और धूप ।।''

अन्यान्य सम्प्रदाय ओर सिद्धान्त, ज्ञान–ध्यान, विद्या–बुद्धि आदि अकारथ हैं, यदि सच्चा प्रेम नहीं। इस तरह रसखान ने प्रेम वाटिका के दोहों में प्रेम को प्रभु–रूप में ही प्रमाणित किया गया है। उनका प्रेम धर्म और सम्प्रदाय की सीमाओं से परे है। यह अगोचर और अगम्य है। वह ब्रह्मानंद की अनुभूति के समान सूक्ष्म और विलक्षण है।

उपर्युक्त पद्याशों के विवेचन में सांस्कृतिक तत्व निम्नलिखित रूप प्रस्तुत है– सुजान रसखान से उद्धृत पद्यांशों में प्रेम, भक्ति एवं सौन्दय के जो चित्र है उनसे भारतीय संस्कृति का उद्घाटन होता है। जो व्याख्या की गयी है उसमें भारतीय साहित्य का प्रयोग भारतीय संस्कृति का निदर्शन करता है। सुजान रसखान के 260 सवैया में राधा का रूपांकन भारतीय संस्कृति का उद्गार है। इसी प्रकार 225 वी सवैया राधा कृष्ण के होली का प्रसंग भारतीय संस्कृति का प्रतिपादन करता है। संस्कृति के अन्तर्गत लौकिक परम्परा त्योहार आदि भी आते हैं। भक्ति भावना में कृष्ण का जो स्वरूप है ऊपर कई पद्यो में इसका वर्णन आया है। कृष्ण रूप का विवेचन भारतीय दर्शन का विषय है। गोपियों का दही बेचने जाना भारतीय परम्परा है। गोपियों के वियोग के उपादान भारतीय संस्कृति के अभिलक्षण के रूप में आये हैं।

अध्याय–5

सन्दर्भ – ग्रन्थ

प्रष्ठ 187 छान्दोग्य 03–07–16

188 सांख्यायन ब्राह्मण अध्याय 30 आनन्दाश्रम पूना।

189 महाभारत, शान्ति पर्व अध्याय 349

189 श्रीमद भवदत गीता अ.2, श्लोक–42,43,44

190 महाभारत शान्ति पर्व 348,351,352

191 आदि पर्व अध्याय 218 श्लोक 12

192 महाभारत सभापर्व 38

'' ऋग्वेद 10/8/5 तथा 10/92/6

'' शतपथ ब्राह्मण 13/3/4

'' ऋग्वेद 12/6/1 तथा 12/10/90

193 वनपर्व 16/47 तथा उद्योग पर्व 49/11

'' ऐतेरेप ब्राह्मण 1/1

'' शतपथ 1/2/5 और 14/1/1

'' आश्वमेधिक पर्व अध्याय 53–54

'' शान्ति पर्व अध्याय 48

194 Vaishnavism and Shaivism (Page 50 Foot note)

'' आदि पर्व (महाभारत) 21–12

'' शान्ति पर्व 342–70

195 Vaishnavism and Shaivism (Bkandarker) Page 50 Foot note

'' ऋग्वेद 1/154/6

'' हरिवंश पुराण 5161'5163 श्लोक

196 वायु पुराण खण्ड–2 अध्याय 17

'' Journal of the Royal Aaiatic Societer For 1907 Page 981

198 पदम–पुराण वाता खण्ड अध्याय 69

199 श्रीमद भागवत 2/7/26

'' वही 01/03/01

'' वही 11/04/03

'' वही 10/10/14

200 देखिए गीता 9/8, 15/7,10/20/, 10/41, 9/34

'' महाभारत, शान्ति पर्व अध्याय 329 श्लोक 21–28

201 श्रीमद भागवत 10/85/21

'' गीता 10/42

'' भागवत 1/08/32/35

205 सं0 विद्यानिवास मिश्र, रसखान रचनावली प्र.89

'' स्वच्छन्द तत्र भाग 2 प्र. 276–277

206 अभिनवगुप्त, परात्रिशिंका प्र.47–48

209 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि पहला भाग प्र.40

'' डॉ. बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना प्र. 126

210 जवि गोस्वामी : श्री भागवत सन्दर्भ प्र. 675

'' श्रीमद भागवद गीता अध्याय 7 श्लोक 25

211 डॉ. बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना प्र. 128

213 हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल) प्र.69

214 डॉ.. विद्यानिवास मिश्र : रसखान रचनावली प्र.132

215 सुजान रसखान पद्य 1

'' वही पद्य 1, 2

216 वही पद्य 7,8,9,10

217 वही पद्य 11,12,13,14,15,16

218 वही पद्य 19,20

219 वही पद्य 22,27,59

220 वही पद्य 64,87,192

223 वही पद्य 107,205,217

225 दानलीला सुजान रसखान पद्य 11